भाई बधेका

बाल जगत की ऊषा

लेखक
गिजुभाई बधेका
सम्पादक
दीप नारायण

आस्था प्रकाशन

ISBN NO. 81-88518-03-4

प्रकाशक : **आस्था प्रकाशन**
592/16, सहदेव गली,
विश्वास नगर, शाहदरा,
मूल्य : 250.00
प्रथम सस्करण : 2002
मुद्रक : पवन प्रिंटर्स, नवीन शाहदरा,
दिल्ली-32

विषय सूची

गिजुभाई का जीवन-परिचय

1885	15 नवंबर को जन्म, जन्म-स्थान : चित्तल सौराष्ट्र।
1897	प्रथम विवाह स्व. हरिबेन के साथ।
1906	द्वितीय विवाह श्रीमती जडीबेन के साथ।
1907	पूर्वी अफ्रीका प्रस्थान।
1909	स्वदेश आगमन।
1910	बम्बई मे कानून की पढाई।
1913	हाईकोर्ट प्लीडर, बढ़वाण केप।
1913	श्री नरेन्द्र भाई का जन्म।
1915	श्री दक्षिणामूर्ति भवन के कानूनी सलाहकार
1916	श्री दक्षिणामूर्ति विद्याथी-भवन से जुड़े।
1920	बाल-मदिर की स्थापना।
1922	भावनगर मे तख्तेश्वर महादेव मंदिर के समीप टेकड़ी पर बने बालमदिर भवन का उद्घाटन पूज्या कस्तूरबा गाधी के कर-कमलो से।
1925	प्रथम मॉण्टेसरी सम्मेलन, भावनगर।
1925	प्रथम अध्यापन मंदिर स्थापित।
1928	द्वितीय मॉण्टेसरी सम्मेलन अहमदाबाद की अध्यक्षता।
1930	सत्यासग्रह सग्राम में-शरणार्थी शिविरो में निवास, वानर परिषद् सूरत, अक्षरज्ञान योजना प्रारभ।
1936	श्री दक्षिणामूर्ति विद्यार्थी-भवन से मुक्त।
1937	सम्मान थैली भेंट।
1938	गुजरात का प्रवास-राजकोट में अतिम अध्यापन मदिर शुरू किया।
1939	23 जन को मुबई मे देहावन।

बाल जगत की उषा

मेरे जीवन का यह एक बडा ही स्वर्णिम दिन है। जब मैंने अपने पुत्र के लिए मॉण्टेसरी के गट्टे, लबी सीढ़ी और चौड़ी सीढ़ी आदि उपकरण बनवाए, और हम दोनों उस प्रबोधक साहित्य मे रमने लगे, तब मुझे पता तक नही था कि डॉ॰ मॉण्टेसरी का पुण्य-बल मुझे आज के दिन कभी आप लोगों के समक्ष इस प्रकार ला खडा करेगा।

यदि मैंने अपने वकालात के पट्टे को बहाल रखा होता तो कदाचित आज किसी न्यायाधीश की कचहरी मे मैं अपने एकाध दोषी या निर्दोष मुवक्किल का केस लड रहा होता; परतु डॉ. मॉण्टेसरी की प्रभावपूर्ण रचनाओ से मेरे जीवन में परिवर्तन आया और मैं सौभाग्यशाली हू कि आज आपके समक्ष निर्दोष बालको की वकालत करने के लिए खडा हू।

आज मुझे जो यह सम्मान दिया जा रहा है, इसके लिए मैं पहला उपकार किसका मानूं ? अगर मेरे मित्र गोपालदास दरबार द्वारा प्रदत्त मॉण्टेसरी-साहित्य से मेरे भीतर चेतना का संचार न हुआ होता तो ? अगर मैने अपने चारो ओर के बालको को माता-पिताओं द्वारा तिरस्कृत न देखा होता तो ? बचपन मे मै जिन पाठशालाओं में पढता था उन जगहों और शिक्षको की मलिनता को मैंने स्मरण न रखा होता तो ? और नित-हमेशा मेरे साथ बसने वाले मेरे बच्चों की मूक-वाणी से मुझे ये स्वर न सुनाई दिऐ होते कि 'बापू ! हम भी इसान हैं, हमें देखों, हमारी बातें सुनो, हमें इंसाफ दो, हमें इज्जत दो, हमे माता-पिता के अज्ञान और मिथ्या-प्रेम से बचाओ, हमारी आजादी के लिए लडाई लडो।' तो ? और श्री दक्षिणामूर्ति नामक सस्था ने (भावनगर मे) बालमदिर शुरू करके मुझे बाल-हृदय के समीप

आने और उसमें मॉण्टेसरी के सिद्धांतों का साक्षात्कार करने का अवसर प्रदान न किया होता, तो ? और अगर संपूर्ण गुजरात के बालकों की आतरिक इच्छा ने मेरे मन में उचित होकर मुझे मॉण्टेसरी का झंडा फहराने की भगवान् द्वारा प्रेरणा न दी होती, तो ? तो मै किसका उपकार मानता ? और इस उपकार को स्वीकार करने का अवसर जिसने मुझे दिया, उस शारदा-मंदिर का भी मे क्यो कर उपकार मानता ?

आज मै आपके समक्ष वर्तमान बाल-शिक्षण की पैगम्बर डॉ. मॉण्टेसरी का जीवन-परिचय देने, या उस कर्मवीर योगिनी के कर्मयोग का वर्णन करने, या उनसे पूर्व के महान् आचार्यो की कथा सुनाने, या देश-विदेश में उनकी जो शिक्षण-पताका फहराने लगी है, उसका विस्तृत मूल्यांकन-विश्लेषण करने को खडा नही हुआ हू। ऐसे ही मॉण्टेसरी-पद्धति जीवन मे शिक्षा के सर्वव्यापक प्रदेश मे किस प्रकार अनेक समस्याओं का हल कर रही है, इसकी मीमासा करने, या कि यह बताने कि डॉ॰ मॉण्टेसरी ने शिक्षा, विज्ञान, मनोविज्ञान में कैसा योगदान दिया है; या कि मॉण्टेसरी की नूतन दृष्टि हमारे समाज, धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष पर कैसा प्रकाश डाल रही है, या कि मॉण्टेसरी की दृष्टि से जीवन-विकास का दर्शन क्या है, ये सब बातें बताने में आपके समक्ष खड़ा नहीं हुआ।

पर मै ठहरा एक अध्यापक, अत. अध्यापक के नाते किस तरह अध्यापक विद्यार्थियों से पूछता है, उसी तरह आप से सवाल पूछने खडा हुआ हू। मेरा पहला सवाल यह है कि क्या आपको अपनी बाल्यावस्था याद है ? वर्षो पीछे अतीत मे दृष्टिपात करके जरा उस अवस्था को याद तो कीजिए, क्या वह आपको याद आती है ? हम छोटे थे और घर मे हम छोकरे समझे जाते थे। कहीं भी हमारा स्थान नहीं था। घर बडों का था, और हम लोग वड़े में समाए हुए थे। बड़ों लोग जब चलते थे तो हमे उनके साथ दौडना पड़ता था। वडो के धर्म और बड़ो के आचार-व्यवहार के अनुसार हमें अपनी दृष्टि, अपना धर्म और अपना आचार-व्यवहार तय करना पडता था। वड़ों के बोलते समय हमे खामोश होकर बैठना पडता था, जव बड़े बुजुर्ग शांतिपूर्वक खाना खा रहे होते थे तब हमें उनके

साथ-साथ खाकर उठने के लिए ग्रास झटझट गले के नीचे उतारने पडते थे। वडो के मेहमानो के पास हम 'हां जी', 'नही जी' कहते हुए अदव से खडे रहते थे और उनकी पसद की कविता सुनाने के लिए हमे सीखनी पडती थी।

क्या हम लोगों ने अपनी बाल्यावस्था में कदम-कदम पर ऐसा महसूस नही किया कि हम बच्चे है। अतः अपने माता-पिता के घर के खिलौने है ? माता-पिता स्वयं खुश होने के लिए अपनी पसद के कपडे-लत्ते हमें पहनाते हैं, अपनी मौजमस्ती के लिए जव मन भाए तव हमे खिलाते-पिलाते, खेलाते-कुदाते हैं ? मेहमानो के आने पर हमें इगित करके, हमारा प्रदर्शन करके माता-पिता अपना मान वढाते है ? समाज मे घुमाने-फिराने ले जाते समय हमे बस इसी कारण सवारते है कि माता-पिता को शर्माना न पडे। में अच्छी-अच्छी चीजे बस इसीलिए जुटाना कि एक धनवान माता-पिता से दूसरा धनवान माता-पिता हमारे लिए याने वालकों के लिए अधिक खिलौने रखता हे, इस बात का अभिमान जताना।

अगर अपना बचपन याद करें तो कइयो को याद आएगा कि आटा छानते समय हम मां से पूडी बेलने का आटा मागते और वजाय पूडी के हम उससे चूहा या मछली वनाते और वेलन की मार खाते ! हमें याद आएगा कि पिता ने जब से हमे नाटक दिखाया, हमे भी नाटक खेलने का शोक चर्राया और राजा बनने के लिए पिता की स्याही से मूछे वनाई नही, कि मार खाई। हमें याद आएगा कि पेंसिल कागज कुछ न मिला ओर 'यह' खराव हो जाएगी, गदी हो जाएगी की सूचना दिये जाने पर भी हमने रसोई की दीवार पर कोयले से चित्र बनाये और इसके लिए छोटी चाची ने हमारा हाथ पकड़कर अच्छी मरम्मत की होगी।

ये वाते किसे याद नही कि घर के आगन के वैठे-वैठे गड्ढ़े खोद रहे थे हम, तो वहा से, दालान में पड़े जूतो को करीने से सजा रहे थे हम, तो वहा से, पालने पर या झूले के लोहे की छड़ों पर लटकते थे हम, तो वहा से, जीने वाली कटहरी से फिसलते थे हम, तो वहां से, लीपने के

लिए लाए गए गोबर से मा की तरह उपले बनाते थे हम, तो वहा से, यू न जाने हमें कहा-कहा से नहीं खदेड़ा गया और न कहा गया कि 'जाओ पाठ याद करो', 'नीचे बैठ जाओ !'

हमें सब जने ऊधमी कहते। हमें मौज-मस्ती आती और गद्दे पर गुलाटी मारी नही कि ऊधम, अपने भाई-बंधुओ के साथ हम जीने से चढने-उतरने का खेल खेलने लगे कि ऊधम, हम आंगन में दौडते-दौडते पेड पर चढने भागे कि ऊधम, कुछ सुना और गाने लगे कि पापा के लिए ऊधम हो गया, बारी पर चढकर हीडे खाने लगे कि ऊधम ! हम कितने सारे ऊधम करते थे !

हम मां को बर्तन उठाने में सहयोग देने लगते कि वह तुनक देती, 'क्यों बीच में आता है !' हम पिताजी की पुस्तकों को सजाकर रखना सीखते, तो वे कह उठते, 'यह क्या बखेडा किया है ?' घर की वाडी मे जाकर हम जामुन और आम बो देते तो माली फूट पड़ता, 'छोकरो ! क्यो बिगाडे हैं ये क्यारे ?' या कभी मां कह उठती, 'ये कपडे गारे में क्यो बिगाड रहा है ?' मौसी कही बातें करती हो और हमने उन्हें कोई बात याद दिला दी तो कह उठती, 'यह आई मेरी दादा गुरु !' पडोसिन को कोई चीज न देने के लिए मां झूठ बोल देती और हम सच बता देते तो मा कह पडती, 'बडा आया याद रखने वाला ?' हम छुरी को घिसते-घिसते झटपट खाना खाने न चल पड़ते तो सब कह उठते, 'देखो, सुनता तक नहीं।' पसंद की कोई चीज हम छोड़ते नहीं और वह हम से जबरन छुडाई जाती तो हम रो पड़ते, इस पर कहा जाता, 'कैसा जिद्दी है ?'

मैं आपसे पूछना चाहता हू कि क्या ये बातें सही नही ? अचानक चाकू से उठ जाती तो ऊपर से पिता लात मारते, 'ध्यान नहीं रखता ? चाकू उठाया ही क्यो था ?' झूलते-झूलते गिर पडते तो मां आकर हमें डांट मारती, 'यह तो इसी माजने का है ! हां, ठीक ही हुआ जो लग गई।' रात को बारह वजे शौच जाने की शंका हुई और मां ने चिढ़ते हुए कहा, 'कल से कुछ भी खाना न दूंगी।'

घर मे हमारी बचकानी बातें सुनने की किसी को फुर्सत नहीं थी।

हमारे खेलने से घर मे गड़बड़ी होती थी। हम लोग कोई नई चीज बनाने लगते तो उससे घर मे कचरा बिखर जाता था। मतलब यह कि हमारे लिए घर में थोड़ी ही जगह है, ऐसा लगा और परिणामस्वरूप हम गली मे उतर आए।

फिर गली मे आकर हमने क्या-क्या सीखा वह भी क्या आपको याद दिलाने की जरूरत है ? रोगाणुओ से भरी गलियो की धूल फाकते हुए हम मे से कितने ही अपना जीवन खो बैठे, उनसे तो अब आगे के प्रश्न से रहे। पर हम जो जीवित रहे है, वे एक-दूसरे से प्रश्न पूछते है कि गली के प्रभाव से भले ही हम शरीर से न मरे हो, पर मन से कितने सड चुके है ? इसका उत्तर हम मन ही मन और इशारो ही इशारों मे देंगे।

घर मे जगह कम पडी इस कारण हम गली में निकल आए। पर गली के विशाल प्रागण में घर की स्वच्छता गई और गदगी आ मिली; गली मे घर वाली टोकाटोकी थी नहीं, बल्कि वहा गुडे लडको का दबदबा था, घर मे खेलने की जगह नहीं थी, तो गली मे खेल की अव्यवस्था थी।

घर के अनुशासन से छूटे, पर गली की उच्छृखलता मे आ गिरे। घर के अति-लौकिक व सभ्यतापूर्ण वातावरण की घुटन से बचे, तो गली के नितांत असभ्य वातावरण का भोग बन गए। गली मे बाते करने की ओर सुनने की आजादी मिली, पर बातो की निर्मलता व मर्यादा ही नहीं रही। घर से नाटक खेलने बाहर भागे, पर गली मे आकर माता-पिता और मास्टरजी के ही नाटक खेले। घर में माता-पिता की चौकीदारी से तो भाग आए, लेकिन गली में क्या करना चाहिए इसकी रंचमात्र भी चिंता रखने वाला कोई नही मिला।

सक्षेप मे, घर से गली मे जाना पड़ा याने कढाई से निकलकर चूल्हे मे जा गिरे।

गली के उस पार अलिया-गलियो मे होते हुए पाठशाला का भवन था। अब मै आपसे पहले सच्चे मन से व गंभीरता से यह पूछना चाहता हू कि हाथ मे डडा लेकर फिरने वाले और हमें मुहारनी रटाने वाले धूल भरी पाठशालाओं के वे शिक्षक आपको याद आये या नही ? इसके साथ

हा साथ आपका स्मृति मे वह गर्दा पाठशाला आर उसम किसा गाडी म खचाखच भरे बकरो और कुत्तो की मानिद बैठ छोकरे, और उनके बीच हाथ में कलम-पट्टी थामे, मैले-कुचैले कपडे पहने, थूक से पट्टी को साफ करते, ओर मास्टरजी की तरह वार-बार तिरछी नजरों से यह देखते कि वे अब किसी पिटाई करने वाले हैं, स्वय आपको याद आएगा।

मुझको खुद को वह याद आती है, और इस वक्त बड़ी ही शर्म के साथ उस पाठशाला को याद करना पडा रहा है। पाठशाला के मधुर सस्मरणों को अधिक याद करना पडता है। लेकिन कक्षा में तंबाकू खाने कक्षा वाला शिक्षक-हम गलिया देता और हमारे माता-पिताओं की मजाक उड़ाता शिक्षक मुझसे भुलाये नहीं भूलता। रौब जमाने के लिए ही वह लडको को पीटता। न पढाना होता तब 'नक्शा देखो', 'गिनती लिखकर लाओ', ऐसा काम सौंपने वाला शिक्षक कैसे भूला जा सकता है ? तड़ातड तमाचे खाते लडकों को मैंने अपनी आंखों से देखा है, और कभी-कभार मेरा गाल भी चमचमाया है। मैं विश्वासपूर्वक बता रहा हूं कि शिक्षक को हमसे कोई लेना-देना नही था। हम गृहकार्य करके ले आते, भौंहे चढाए शिक्षक उसे ले लेते और घंटी बजते ही पाठशाला मे हम ऐसे छूटते जैसे पिजरे से कुत्ते भाग छूटते है। जब कभी मास्टर बीमार होते तो हम बहुत खुश होते, 'हा ! हा ! आज पढना नहीं है। कोई मर जाता और पाठशाला मे छुट्टी होती तो हमारे मजे ही मजे थे। मैं आपके सामने कोई अपना जीवन चरित्र सुनाने को खड़ा नही हुआ हूं, अपितु शिक्षण का एक युग चित्रित करने खडा हुआ हूं। यह चित्र बहुत लबा है, बहुतपक्षी है, फिर भी कूची के मोटे-मोटे हाथ मारकर उसे व्यक्त करना चाहूंगा।

हमें सभी शिक्षको की नकल उतारना आता था। पढ़ाने में सबसे अधिक होशियार शिक्षक हमे सबसे अधिक नापसद था। जो अध्यापक पढने से छुट्टी देता और घर से काम करने लाने को सौंपता था वह बहुत पसद आता था। परीक्षा मे नकल कराने वाला अध्यापक हमें बहुत पंसद आता था। उन दिनों हमें यह ज्ञान नहीं था कि नकल करा कर शिक्षक परीक्षक के साथ छल करता है।

आप में से अनेक को क्या परीक्षक या नहीं कि हमारा परीक्षक कैसा वयोवृद्ध, अविनोदी अफसर होता था। जो आंख दिखाता था। उसकी मान्यता थी कि परीक्षा लेना एक धंधा चलाना है। परीक्षा लेते वक्त क्या उसने कभी एक बार भी मनोविनोद किया ? नदी और पहाड़ों के बारे मे पूछने के सिवा क्या उसने हमारे जीवन से सबधित एक भी बात कभी पूछी थी ? परीक्षा की तैयारी करने मे हम कितने हैरान-परेशान हुए होंगे, उस संबंध में क्या उसने कभी एक भी प्रश्न पूछा था ? और परीक्षा के वक्त हममें से कइयो को क्या बुखार नही आ जाता था ?

और हम पढते भी थे तो परीक्षा के लिए। परीक्षा बीती नहीं कि हम चैन की सास छोडते हुए आजादी अनुभव करते थे। खेल होने वाले रोते थे और पास होने वाले उछलते-कूदते थे। जब परीक्षाएं आती थी तब हमारे खेल कम हो जाते थे। घर में पढाई ही पढ़ाई का माहौल रहता। सपने भी परीक्षा के या पास-फेल के आते। परीक्षा बहुत बडा हौवा था। सच मानिये। मै तो आज भी परीक्षा में बैठता हूं तो मुझसे लिखा तक नही आता। और 'हाय राम, क्या होगा' के सपने आते हैं।

हमारी शिक्षा याने जानकारी, जाकारी, जानकारी ! ज्ञान, ज्ञान, ज्ञान ! इतिहास की वर्ष वार घटनाए। याद, साबरमती और ढाढर नदी के ऊपर वाले शहरो के नाम याद, महाजनी हिसाब और पाठ तो फर्राटे से याद, कविता और उनके अर्थ याद। भौतिक शास्त्र और शरीर शास्त्र जो भी विषय पढता वैठे उनके सारे विवरण कठस्थ। इसका नाम जाना, उसका नाम पढा। लेकिन इनमे से विकास कहां किस चरण में था, यह पता लगाना मुश्किल है। पर पढाई का यही स्तर था और हम उससे भली-भाति परिचित हैं।

हमारी पाठशाला शिक्षण की प्रयोग भूमि नहीं थी। वह क्रीडागण नही थी। नाट्यशाला नही थी, सग्रहालय भी नहीं थी। कलामंदिर ही थी। वह बगीचा भी नही था। टूटी-फूटी चारदीवारें, मैला-कुचैला उखड़े तले वाला आंगन, दागों वाली वेंचे, टूटी हुई पट्टियों और फटी हुई किताबो वाले हम तथा डंडा लेकर घूमते हमारे अध्यापक ! यह थी हमारी

पाठशाला

वहां हम बहुत जुम करते थे। सिर्फ बातें करते, पाठशाला-कार्य नहीं करते, कबूतर, उडाते, मास्टरजी कोई नई चीज लाते तो टेबिल से उड़ा लेते, एक-दूसरे की खासियतों की नकलें करते, किसी विद्यार्थी को उत्तर न आने की दशा में मास्टर की मार से बचाने के लिए उसे उत्तर लिखकर दे देते, खेल याद आते और ध्यान नहीं रहता तो इधर-उधर देखते, शिक्षक श्यामपट्ट पर हमें हिसाब करना सिखाते और उसमें मजा नहीं आता तो हम झोंके खाते, घर से करके लाने को दिया जाता और किया न होता तो डर के मारे बहाना बनाते कि सिर में दर्द था, मास्टरजी का डंडा तोड़ डालते या छुपा देते। ये सब हमारे अपराध थे और हम थे अपराधी। फिर शिक्षाशास्त्र के द्वारा हमें सजाएं दी जाती। खड़े रहो, अंगूठा पकड़ो, उठ-बैठ करो, तमाचे खाओ आदि-आदि ! अगर सजा देने के विविध तरीकों की सूची तैयार करें तो पाठशालाओं का अच्छा-खासा पीनल कोड तैयार हो जाए।

पाठशाला के शिक्षक की दशा कैसी थी। उसकी आर्थिक व सामाजिक स्थिति की दयनीयता की बात उसकी ज्ञान-समृद्धिगत दरिद्रता की कथा के बारे में नहीं कहूंगा। आज के संदर्भ में बालकों के प्रति व्याप्त तिरस्कार के बारे में अवश्य कहा चाहता हूं। अगर यह समस्या समझ में आ जाए तो चाहे बीता कल कैसा ही क्यों न रहा हो, आने वाले कल का शिक्षक अवश्य बदल जाएगा। अतः शिक्षक को और उसकी निंदा को यहीं छोड़ें और आगे बढ़ें।

इन तमाम पुरानी बातों को पुराने लोग अपने मन में तो अवश्य स्वीकार करेंगे, लेकिन हममें से कई जने कहेंगे, 'गिजूभाई ने रोजाना की तरह कोई किस्सा छेड़ दिया है।'' मेरे सामने बैठे सेठ अमृतलाल या श्रीमती सरलादेवी जैसी आज के सुशिक्षित माता-पिता, या आप में अनेक महानुभावों ने, जिन्हें विचारशील माता-पिता की छत्रछाया में बाल्यकाल बिताने का सौभाग्य मिला होगा, वे हाथ उठाकर 'नहीं, कहेंगे। इसी तरह वर्तमान मॉण्टेसरी पाठशालाओं के बालक, जो इधर-उधर कहीं बैठे हैं,

खडे हुए विना ही कह उठेगे, 'गे गिजुभाई, ये क्या गप्पे हांक रहे है ? हमने तो ऐसा कुछ देखा नही।' और मेरे साथी कई शिक्षक-परीक्षक जरा दुखी होकर कहने लगेगे, 'श्रीमान् कितने परिश्रम से हम अपने शिक्षण मे सुधार कर रहे है और आप है कि उसे देखे-समझे बिना ही क्या प्रलाप किये जा रहे हो ?'

मैं इन सवों के मधुर उलाहनों को सुन लूंगा, पर कहूगा जरूर। अलबत्ता, गिने-चुने घर और थोड़े बहुत शिक्षक नूतन शिक्षण को--नए प्रकाश को ग्रहण करने लगे हैं, फिर भी स्वयं चारों ओर नजरे उठाकर जरा बताइए तो सही कि हमारे आज के घरों में भी बालकों की दशा कैसी है ? क्या ऐसी बात नही है कि दिनोदिन हम अधिक से अधिक कार्य-व्यक्त होते जा रहे है और परिणामस्वरूप धन-संपन्न होने के कारण अपने बालको को नौकरों या आया के हाथ या एकाध ट्यूटर के भरोसे छोड देते है ? आज मोटरों और मिल के भोपुओं की आवाज में लाखों असभावित बालकों का रुदन हमे सुनाई तक नही देता। गंदगी में सड़ने वाले बालको की संख्या पर गौर करें तो वह साफ-स्वस्थ बालको से कम होगी या ज्यादा ? क्या बच्चे खिलौनों से संतुष्ट हो जाते हैं ? क्या बालकों के लिए घर में एकाध अलग से संदूक का इंतजाम किया हुआ है ? और क्या पाठशालाओ की स्थिति मे बदलाव आया है ? ट्रेनिंग कॉलेजों से अच्छी से अच्छी शिक्षण-विधियां सीखकर आए शिक्षक क्या अपनी पाठशालाओ मे उनके अनुसार शिक्षण-कार्य करते हैं ? यूं कहिए ना, कि वे थोड़ा बहुत किंडरगार्टन और मॉण्टेसरी-पद्धति के बारे में जानते है। क्या उनकी पाठशालाओं में फ्रॉबेल के उत्साहवर्द्धक खेल हैं। क्या उनमें मॉण्टेसरी का बाल-सम्मान है। कहीं शिक्षको का उत्साह पाठ्यक्रम, परीक्षा-पद्धति तथा जीवन की जटिलताओं के कारण कुचल तो नहीं गया ? हाय, सजा मिल रही है तो इनाम बढ़ने लगे हैं। रटाई घट रही है तो विविध युक्तियो से आनद उत्पन्न करने वाले प्रयत्नों द्वारा दिया जाने वाला शिक्षण बढ़ने लगा है। लेकिन इनके परिणामस्वरूप वास्तविक ज्ञान नही बढ रहा। संगीत, चित्रकला आदि बढ रहे है तो एक ओर पाठ्यक्रम के विषय बढ़ रहे हे

ओर दूसरी ओर कक्षा-शिक्षण में इन विषयों की पढाई लज्जास्पद देखने मे आती है। ये बातें आप लोग कौन-से नहीं जानते ?

संक्षेप मे कहा जा सकता है कि परिस्थिति बदली नहीं है, सिर्फ पासा बदला है, पर बातें वहीं कहीं वही है।

लेकिन अब ससार के रंग-पटल पर एक नई उषा का आगमन का हुआ है। और इस अरुणिम विहान की दिशा मे जाने को मानो हम सब जाने-अनजाने तैयार बैठे हैं। जिन घरों मे यह नया प्रकाश पहुच गया हे, क्या मैं आपको उनके बाबत कुछ बताऊ ? सुनिये। वहा कि बालक स्वस्थ हसी हंस रहे हैं। घर के बडे सदस्यों की तरह वे एक स्वतत्र व्यक्ति के रूप में अपनी गतिविधिया कर रहे है। ये रहे उसके पिता। समादरपूर्वक पूछते हैं, 'क्यों भई, खाना खाने को तैयार हो क्या ?' और मां पिता को जब तक खाना परोसे तब तक बालक अपना चित्र-कार्य पूरा करके दौडा हुआ माता-पिता के घर मे बालक का अपना छोटा-सा घर ! सचमुच वह बालक का ही घर है। बालक वहा पिता की तरह स्वच्छंदता से रहता है। माता की तरह अपना कामकाज करता है। पिता के दोस्तों की तरह अपने दोस्तों को वहा बुलाता है। बालक के नन्हे-से घर में उसके जीवन-विकास की ये रही कितनी सारी चीजें। यह उसका छोटा-सा आसन और ये तमाम जीवनोपयोगी चीजें। देखिए, वहां उधर चला गया वह ? कितनी तल्लीनता से अपना घर साफ कर रहा है ? जैसा भी आता है वैसा ही करता है। मां उसके पास आकर कहती है। शातिपूर्वक हाथ-मुह धोकर वह कपडे पहन रहा है।' माता-पिता ने झांक कर देखा और बालक बोल उठा, 'लो तैयार हो रहा हूं।' मां उसकी प्रतीक्षा मे खड़ी है। देखिए, वह एक अच्छा अपने आप कपड़ों के बटन बंद कर रहा है। आया उसकी सहायता को दौड़ती है। बच्चा मौन दृढ़ता से कह देता है, 'मुझे आता है। मैं तेरा गुलाम नहीं।' आया बाहर आकर मां से शिकायत करती है, 'मुझे को बटन लगाने तक नहीं आते और मुझ पर आंखें निकालता है। न जाने कब वह कपड़े पहनकर तैयार होगा !' इस पर मा कहती है, 'भले ही उसे कपड़े पहनने में देर हो जाए। अपने आप पहनता है तो पहनने दे। इसे

अपग कनान को थोड़े ही रखा है तुझे।

और इस नए घर में बालक के पिता मेहमान से कहते है, 'छोड दीजिए इसे। हमारे बच्चे गेंद की तरह उछालने के और दिल्लगी करने के खिलौने नहीं हैं। क्षमा करना जी !' ऐसे नए बालक के लिए नए विचारो वाली मां अपनी सहेली से संकोचपूर्वक कहती है, 'बहन, बच्चे का चुंबन न लें। देखो ना, कहां रुवा इसे ? हमें ऐसा प्यार नही जताना चाहिए कि जो बच्चे को रुचे नहीं !' माता-पिता दोनों समझदार हैं। खास-दोस्त आते हैं और बालक से कहते हैं, 'देखें तुझे गाना आता भी है ? गा देखें ! तुझे तो इनाम मिलना चाहिए। बहुत होशियार है तू।' कोई कहता है 'अरी देखा, तुझे तो कुछ भी नहीं आता। वह लड़की कैसे गूंथ रही है ?' ऐसा कहने वाले को माता-पिता इशारे से मना करते हैं और फिर बाद मे स्पष्टीकरण देते हैं, 'मैं आपको बताऊं ? बालको को निंदा-स्तुति से मुक्त रखना चाहिए। वे तो इनके बिना भी मजे करते हैं।'

क्या आप भरोसा करेगे कि इस नए घर में नए बालक के साथ नए विचारों में सस्कारित बना पिता हास्य-विनोद करता है। वह उसके साथ खेलता है, उसके साथ बाल-जीवन की छोटी-छोटी बातें करता है, बालक के साथ समभाव से चर्चा करता है। तर्क-वितर्क भी करता है वह, और आदरपूर्वक उसके जीवन को जानने-समझने और उसकी तकलीफों को दूर करने हेतु तत्पर रहता है ! एक वकील, डॉक्टर या व्यापारी अपने ग्राहक को न खोने हेतु जितना ध्यान रखता है, उससे अधिक ध्यान ऐसे माता-पिता अपने बालक का रखते है कि वह उनके अंतःकरण के पास रहे, कहीं खो न जाए ! और माता अपने बच्चो के नाजुकतम सवालों को दबाए बिना अत्यंत स्वाभाविता से उन्हें जवाब देती है। माता फूलों से भरे बागीचे में फूलों की देवी की मानिंद उन बालकों के बीच घूमती है। बच्चे हंसते हैं, खिलखिलाते है, माता को सुंगध प्रदान करते है और अभिमान का मौका देते हैं कि बाल-मानस की दृष्टि से मेरा घर पृथ्वी का स्वर्ग है।

ऐसा नया घर हममें से कितनों ने देखा है ?

आने वाले कल की जो नयी पाठशाला बन रही है, क्या उसका भी

आपको परिचय दूं ? यह एक स्वप्न है, ऐसा भले ही कहें, पर वह अब नयी पाठशाला नही रही, वह बालकों का दूसरा घर है ?

काम करते-करते थका हुआ बालक इधर एक तरफ शांति से लेटा आराम कर रहा है। उधर वह बालक अपने मित्र को हसते-हसते बता रहा है कि उसने घर पर क्या खाया-पिया था। एक बालक झूले पर बैठा है। उधर एक बालक तरह-तरह के खिलौनों से खेलने मे मशगूल है। पर ये खिलोने बाजार में बिकने वाले हाथी, घोड़े या मूर्ति जैसे नही, इधर इस बच्चे की तरफ तो देखो, कांच में चेहरा देखते-देखते कब से अपने बालों को सवार रहा है ! सिर्फ तीन साल का है। यह सचाई है या सपना कि इतने नन्हे-नन्हे बालक अपने आप चालीस, पचास बालकों का नाश्ता सावधानी से परोस रहे हैं। जमीन पर गिरने वाली नाश्ते की चीजो को मुह मे डालने के बजाय टोकरी में डालते हैं। ये रहे तीन बच्चे, धीमे-धीमे, खड़का किये बिना उघाड़े प्यालों को रकाबियों से ढक रहे हैं। यहा एकाग्रता है, काम का आनंद है, स्वस्थता व शांति है, स्नायुओं पर नियंत्रण है। यह एक छोटी-सी मंडली इतनी कम उम्र में साथ मिलकर सहकारी काम कर रही हैं।

जरा कल्पना कीजिए। दो बालक यहा बैठे-बैठे चित्र बना रहे हे। वहां एक बालक खिड़की को साफ कर रहा है। उधर एक बालक आसन समेट रहा है। उधर वह बालक हाथ धोकर टूवाल से पौछ रहा है।

इस कक्ष में यह धूप की गंध कैसी है ? भीतर कौन है ? क्या पूजा या आराधना का कक्ष है ? अरे, यहां तो ये बालक बैठे हैं, स्वस्थ व शात ! निःशब्द ! इस धुंधले प्रकाश में अगरबत्तियों की लाल रोशनी सुशोभित हो रही है इतने सारे बच्चे क्या शोरगुल या गडबड मचाने वाले ही होते है ? यह बात मानने तक में नहीं आती कि चालीस-पचास बच्चो की नन्ही-सी मंडली ध्यान-मग्न होकर ध्यान द्वारा आनंद की खोज करे।

पर इन तमाम प्रवृत्तियों में पाठशाला कहां है ? यहां तो बच्चे पतिंगों के पीछे दौड़ रहे हैं, और उन्हें कोई रोकता तक नहीं। यहा एक बालक कब से रेत के घरौंदे बना रहा है, कोई उसे पढ़ाता तक नहीं। यहां पर

बालक उस कोने मे गड्ढे खोदकर मथी व मूग उगा रहे है और छोटी सी झारी से पानी सींच रहे हैं, यहां पाठशाला कहा है ? पढ़ाई कहां है ? शिक्षक महाशय कहां है ?-वे ये बैठे। इस बालक को पेंसिल छील कर दे रहे है, शौच करके आए बालक को पानी से धुला रहे हैं, वह एक बालक दौडता हुआ आकर नमस्कार करता है और ये स्वीकार कर रहे हैं, उस नए घर के पिता की तरह बालक को कहानी पढकर सुना रहे हैं या मां की तरह समाचार पूछ रहे हैं कि 'क्या खाया था आज' 'क्या पीया था ?' यहां शिक्षक कहीं नहीं है। और ये शिक्षक भाई या बहन ही बालक के सर्वस्व है। बालक के विकास की इन्हें चिंता है। ये विकास के शास्त्र को समझते है। बालक की आवश्यकताओ को जानते हैं और उसी के अनुरूप वातावरण रचकर वहां बालक को एक वृक्ष की तरह उगने, खिलने, फलने-फूलने को मुक्त करके एक सहायक बागवान की तरह पास खड़े है।

यह नया घर ही नयी पाठशाला है।

नए युग के ये पूर्वचिह्न कहीं भावी के गर्भ में हैं तो कहीं सुस्पष्ट दिख रहे हैं। लेकिन इस बाल-युग का नया शुभारभ तो हो ही चुका है आज पूरी दुनिया में बाल-शिक्षण, बाल-विकास, बाल-साहित्य, बाल-पोशाक, बाल-आहार आदि अनेक प्रश्नों की उत्साह एव आग्रहपूर्वक चर्चा चल रही है। बालको के उद्धार में संसार का उद्धार देखने वाले विद्वान् क्रांत-दृष्टि से कह रहे हैं-नयी पीढ़ी को हाथ में लो, नयी पीढ़ी को व्यक्तित्व प्रदान करो, नयी पीढ़ी को परतंत्रता से बचाओ। नयी पीढ़ी को व्यष्टि समष्टिगत जीवन का मेल समझाओ। इस दुनिया को लड़ाई-झगड़ों से, बैर-द्वेष से, युद्धों से, अनाथाश्रमों और पागलखानों से कचहरियों और कैदखानों से, गरीबी और विलास से, सत्ता और गुलामी से बचाना हो तो नयी पीढी की शिक्षा को नया स्वरूप प्रदान करो। जिस घर और जिस पाठशाला ने आज की यह दुनिया बनाई है (दुनिया को घर और पाठशालाए ही बनाती हैं) उसे तोड़ डालो और अंधेरे को मिटाने के लिए नई रोशनी आने दो।

इस नई दुनिया के नए पैगाम का परचम आज किसके हाथ में है ?

जिन्होने अथाह श्रम और सेवा मे जीवन के नासतिक दिवस बालक के पास बैठकर बिताये हैं, जिन्होंने परेशान व बेचैन बालकों की चीख-पुकारें ही नहीं, बल्कि उनके अंतःकरण की व्यथा को सुनकर दुनिया भर को चुनौती दी है, कि 'बालक को आजादी दो', 'वालक को सम्मान दो' ओर जिनके पूर्ववर्ती आचार्य आज आजादी की प्रत्यक्ष भेट समर्पित की हुई देखकर अपना जीवन धन्य मानेंगे, जिन्होंने एक बालक को नहीं अपितु अनेक बालकों को शरीर नहीं, बल्कि जीवन देकर जगन्माता का अमूल्य पद हासिल किया है वे सब आज के बाल-पैगंबर हैं। उनके जीवन का तपश्चर्या का आज उत्सव है।

यह नया युग आज हिंदुस्तान में आ चुका है, पर यह उसकी शुरुआत मात्र है। इसे घर-घर ले जाकर स्थापित करने के लिए अभी हमे बहुत-कुछ कहना शेष है। लेकिन इससे पहले जरा देख तो लें कि हमारे यहां क्या-क्या काम हो चुका है। सिर्फ गुजरात पर ही दृष्टिपात कर ले। इस समय हमारे यहां शाम के समय जितने तारे नजर आते हैं इतनी ही मॉण्टेसरी पाठशालाएं है और अंगुली के पोरों पर गिने जा सकें इतने मॉण्टेसरी घर हैं। तीन हजार मॉण्टेसरी सदस्य हैं। पर मॉण्टेसरी साहित्य अभी कितना कम है ? घरों व पाठशालाओं में अभी मॉण्टेसरी भावना (स्प्रिट) आते बहुत वक्त लगेगा। तथापि मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूं कि बालक के प्रति हमारी दृष्टि निरंतर श्रेष्ठता की तरफ बढ रही है। कल की तुलना मे हम आज बालक के लिए अधिक चिंतातुर बने है। पर अब भी बहुत कुछ शेष है। बहुत कठिनाइया हैं। हमें इन तमाम कठिनाइयो पर नियंत्रण करना पड़ेगा।

भारतीय मॉण्टेसरी-पद्धति को भारत में अपनाते वक्त हम इसे भारतीय प्राण से अलंकृत करेगे। मॉण्टेसरी-पद्धति यहां प्रयोग-भूमि ही बनी रहेगी, भले ही वह हिदुस्तान के छप्परों नीचे, हिदुस्तान की जमीन पर, हिंदुस्तान के आसन पर बैठे। हम मॉण्टेसरी वाली टेबल-कुर्सियों के बजाय बालकों को अपने (मन से) चित्र बनाने का काम पाटों (बाजोट) पर करने का देंगे। भारतीय मॉण्टेसरी पाठशाला के बालक नाश्ता लेंगे,

पर टेबल-कुर्सी पर बैठकर या जूते पहने नहीं मॉण्टेसरी-गृह में बालको का हम कला का वातावरण देंगे, पर हमारी पुष्प-सज्जा व शृंगार का काम मिट्टी के पात्रों में बबूल, आवला या नील के पत्तो से ही हो जाएगा। भारतीय मॉण्टेसरी बालकों के हाथ मे वाद्य-यत्रों के लिए इकतारा ओर मजीरे होगे। प्लास्टिसीन के बजाय कुम्हार के यहां की सादी माटी से बालक तरह-तरह के खिलौने बनायेगे। हमारी पाठशाला के आंगन मे बालक राई,मैथी, तुलसी मरवा, कनेर, बारहमासी आदि के बीच घूमेगे। यहां के बगीचों में आंवला भी होगा।

फिर भी इस देशी पाठशाला में हाथ पोछने के लिए टूवाल ही होगा, पैर पोंछाने के लिए पावदान के विना काम नही चलेगा। खाने के लिए हाथ धोना अनिवार्य होगा और खाने के बाद कुल्ले भी करने पड़ेंगे। बालो को सवारकर रखना होगा, नाक पोंछने के लिए रूमाल जरूरी होगा ओर मल-मूत्र के लिए निर्धारित स्थान तो होंगे ही। ये सब नहीं होंगे तो मॉण्टेसरी पाठशाला नही बेनेगी।

हमे मॉण्टेसरी पाठशाला स्थापित करनी ही पडेगी, और वह भी हमारी अपनी आबोहवा में ही। हमें अपने देश का शास्त्रीय दृष्टि से अवलोकन करके उसके आंकडो पर बालकों की पढाई का प्रबंध करना चाहिए। स्वतंत्रता और स्वयं-स्फूर्ति का वातावरण (याने प्रयोग-भूमि की स्वाभाविक आधारभित्ति) हमारे यहां भी हो। शास्त्रीय शोध के लिए सत्यनिष्ठा, तटस्थता, अमताग्रह चाहिए, साथ ही समाज को रूढ़ियो व धार्मिक कट्टरता से मुक्त होना चाहिए। इनके अलावा बाल-विकास को मापने के तथा विकास के तमाम सहायक साधन भी यह प्रयोगशाला स्वतः मांग लेगी। यह प्रयोगशाला, धर्म, जाति या देशो के फर्क को स्वीकार नही करेगी। भारत के बच्चे आज शरीर व मन से कहा हैं, और अगला कदम किसमें निहित है, यह खोज यह प्रयोगशाला हिंदुस्तान के लिए ही करेगी। जिस प्रकार मॉण्टेसरी-पद्धति का अर्थ स्पेन अपने लिए, स्विट्जरलैड अपने लिए, आयरलैंड अपने लिए करता है वैसे ही हिंदुस्तान भी (अपना मौलिक) करेगा। ऐसी प्रयोगभूमि को जब तक हम स्थान-स्थान

पर स्थापित नहीं कर देंगे तब तक समझ लें कि हमारा काम बहुत धीमा है।

हम, याने गांव ! और गांव की शिक्षा का हल याने राष्ट्रीय जीवन का समाधान। बाल-जीवन के प्रश्नों का हल ढूढने के लिए हम मॉण्टेसरी को वहा भी ले जाएंगे। स्वावलबन और स्वतंत्रता ये दोनो मॉण्टेसरी-पद्धति के प्राण है। ये चीजें मॉण्टेसरी-पद्धति के पास न होती तो हमे उसकी कोई जरूरत नहीं पड़ती। लेकिन गावो को आज श्रममय जीवन की आवश्यकता है। हमारे वर्तमान जीवन की यहीं एक महान् बुराई है कि वह प्रमादी और परावलंबी बन गया है। गाव इसी कारण से लूट जाते हैं कि वे अज्ञान मे डूबे हैं, वहमो के अंधेरे में गर्क है, बुद्धि की जडता मे खोये है। यही वजह है कि गांव आज सबसे अधिक भय-त्रस्त है। और गांव याने हम सब-हम, हमारे शहर, हमारा संपूर्ण राष्ट्र। इन गावो के लिए हमें मॉण्टेसरी-पद्धति दूर फेंक देने की चीज लगती, अगर यह निर्भयता की शिक्षा देने वाली न होती, स्वावलबी बनाने वाली न होती, निर्मल ज्ञानदात्री न होती, गुलामी से मुक्ति देने वाली न होती।

जो बालक आज गदगी में सड़ चुका है, जो माता-पिता के दुराचारो और दुष्चक्रों में अंतिम सांसें गिन रहा है, जिस बालक की शिक्षा अक्षरज्ञान जितनी भी नहीं है, जिस बालक की वैज्ञानिक आखे मुदी है, जिस बालक की भावनात्मक तीव्रता पशुता के उस पार जाने नही लगी, जिस बालक के नाखून बढ़े हुए हैं, माथे में जुएं भरी है, कपडे फटे है, दुर्गंध फूट रही है, नाक बही जा रही है, कान और आख से मवाद वह रहा है, और जो गांव की धूल मे पड़ा है, वहीं बालक आज शहरों के गरीब मोहल्लों में, मिल-मजदूरो की झोंपड़ियो मे, पिछड़ी जातियो के मोहल्लो मे है। ऐसे बालक मूक वेदना को सुनकर ही मॉण्टेसरी दौड़ी आई है। जिस प्रकार डॉ॰ मॉण्टेसरी को भी आने वाले युग में अवतारी जैसा ही सम्मान मिलेगा।

पर डॉ॰ मॉण्टेसरी की दृष्टि बड़ी बेधक है। गांवों के दु खी वालको के दुःख को जैसे उन्होंने देखा, वैसे ही ऊपर से दिखने वाले शहरो,

श्रीमंतो, अमीर, उमरावो के वालको के दु:ख को भी वे देख सकी। आयाओं और नौकरो के हाथो मे कुचले जाते, धमकाये जाते वालकों को वह सहन न कर सकीं। माता के मौजूद रहते वालक को दूसरी औरतो का दूध पिलाने वाली अमाताओं को उन्होंने खेदपूर्वक देखा। सुदर वस्त्र पहने हुए लेकिन नौकरो के द्वारा अपग वने वालको को देखकर उनका दिल जलने लगा, और प्रेम तथा हेत में प्रभु द्वारा मार्ग हुए वालको को मिथ्या प्रेम व हेत के नीचे कुचले जाते देखकर उन्हे वहुत पीड़ा हुई। उन्होंने बालकों की तरफ देखा और उनके बाल-हृदय में प्रवेश किया। बाल-हृदय के निमित्त उन्होने हमे मॉण्टेसरी-पद्धति का अवदान दिया। आज हमें यही विचार करना है कि इसे स्थान-स्थान पर कैसे लेकर जाए।

हम याने हम सब ! हम याने हमारे धरनी व निर्धन, हम याने शिक्षा की सत्ताएं और हमारी राज्य सत्ताएं, और हमारे प्रत्येक मां-बाप। हम सब मिलकर जागे, अपने घरों को रहने योग्य बनायें अपने धन को लाखो वालकों के लिए खर्च करे, अपनी शिक्षा-सत्ता का वालको को निमित्त सदुपयोग करें तथा अपनी राज्य-सत्ता भी वालकों के राज्य के निमित्त खर्च कर डाले।

अभी हम लोग कितनी कम संख्या मे हैं। मॉण्टेसरी सघ के मत्री तीन हजार सदस्य गिनाते हैं। पर गुजरात की आबादी एक करोड़ तक पहुच रही है। सघ का प्रत्येक सदस्य मॉण्टेसरी के प्रचार के लिए कितना सहयोग देगा ? प्रत्येक सदस्य एक-एक नये सदस्य को वढ़ाए तो थोडे ही वर्षो में गुजरात सम्मान करता है, इसका प्रमाण आपकी रिपोर्ट में मोजूद हे, और मुझे विश्वास है कि गुजरात आपके प्रयत्नो को धन्य करेगा। लेकिन धनिकों से में कहे बिना नही रह सकूंगा। केवल पचास आजीवन सदस्य है, याने विशाल समुद्र मे खसखस ! अकेले अहमदाबाद में सैकडो की संख्या मे आजीवन सदस्य हो सकते है। प्रत्येक आजीवन सदस्य मॉण्टेसरी के प्रचार का ध्वजास्तभ है। मॉण्टेसरी-पद्धति को अपना वनाने के लिए अगर धनिक धन देगा तो विद्वान् लोग अपनी बुद्धि देगे। हम जानते है कि मॉण्टेसरी का साहित्य हमारे यहा कितना कम है। मॉण्टेसरी

क अध्ययन ..... अभी कोने कचीने मे पड़े है. अ . . अभी कोने-कचौने मे पडे है। अध्ययन के साधन कम है। क्या हम साहित्य की अभिवृद्धि के लिए अपना धन व बुद्धि खर्च करने मे विलंब करेंगे एक बार हमने समझ लिया कि बालक हमारा महान् धन है, हमारा यह जीवन उस पर निर्भर है। यह आसपास पड़ी समस्त जीवन प्रवृत्ति तो इसकी होनी ही है, खुद अपना जीवन भी हम बालक के लिए ही जीते है तो हम अपना सर्वस्व अर्पित कर देगे। इसीलिए मुझे विश्वास है कि किसी भी देश मे, किसी भी काल में कोई बात समझ मे आ जाए तो बाद मे धन और बुद्धि कभी पीछे नहीं रहते।

हमारी शिक्षा की सत्ता को यह नवयुग लाने के लिए अब अपनी पद्धति बदलनी पड़ेगी। जो काम सारा संसार कर रहा है अगर उसे भारतवर्ष नहीं करेगा तो जाएगा कहा ? अब तो शिक्षा का बजट सबसे पहले—और उसमे भी बालशिक्षण का बजट सबसे पहले तैयार होना चाहिए। अध्यापक महाशय को पुस्तकों के भडार के बीच से बाहर निकालकर बच्चों के बीच गाना, बजाना, कूदना चाहिए। अर्थात् अध्यापक को पुराना बाना त्याग कर नया बाना पहनना पडेगा। बालकों को तब तक संतोष नहीं मिलेगा जब तक कि अध्यापकगण सिर्फ परीक्षा देने के लिए ही किंडरगार्टन या मॉण्टेरी-पद्धतियों को पढेंगे और बाद में, वापस भूल जाएंगे। बालक तत्काल कह देंगे कि हमे बोदे और पचास वर्ष पुराने बालशिक्षण के संशोधन नही चाहिए, तुम्हारी शिक्षा की सत्ता हमें तभी मान्य है कि जब वह हमें सत्ता का शिक्षण प्रदान करने की अपेक्षा समानता की शिक्षा दे। हमारी शिक्षा-सत्ताओं को ही करना है यह काम !

जिन थोड़े-से देशी राज्यों ने मॉटसरी-पद्धति को शुरू किया है उनका अभिनंदन करते हुए मुझे प्रसन्नता है। एक राज्य के बालक सुशिक्षित हुए अत: एक राज्य अधिक सुखी, समृद्ध और बलवान बना, क्योंकि राज्य अपने बालकों पर निर्भर करता है। जिन राजाओं को ऐसा शौक है कि उनकी प्रजा के बालक उत्तम शिक्षा हासिल करें, उन्हें मेरा धन्यवाद ! पर अभी अनेक राजाओ ने शायद मॉण्टेसरी-पद्धति का नाम तक नही सुना

होगा। लेकिन क्या वे पीछे रह सकेंगे ? स्विट्जरलैंड ने अपने राज्य में मॉटसरी-पद्धति को सर्वात्रिक एवं अनिवार्य कर दिया है, इटली की रानी ने मॉण्टेसरी बालमंदिरों को खुला कर दिया है और मुसोलिनी ने प्रमाण-पत्र के बिना एक भी बाल-विद्यालय चलाने से इंकार कर दिया है। तब भला भारत के राजा मॉण्टेसरी-पद्धति से अब कितनी दूर सकेंगे ?

हमको अभी बहुत कुछ करना है। हम में से कितनों ने तो पूरी दुनिया में घूम-घूमकर देश-विदेश की बाल-पाठशालाओं तथा बाल-शिक्षण का अध्ययन किया है अनेक जिज्ञासु विद्यार्थियों को बाल-शिक्षण की थाह लेने के लिए दुनिया भर में प्रवास पर भेजने का कदम हम कब उठायेंगे ! गुजरात के पास क्या द्रव्य कम है ? गुजरात दानवीर है। विदेश में जाकर अध्ययन करने के लिए कोई छात्रवृत्ति देने वाली संस्था घोषित करने में गुजरात को कितनी देर लगेगी ? हम अपने व्यापार को बढ़ाने के लिए प्राचीन काल से ही देश-देशांतरों से संबद्ध रहे हैं, और समय-समय पर परदेश की समृद्धि को अपने देश में लाकर हमने अपने देश को समृद्ध बनाया है। आज दुनिया भर में बाल-शिक्षण की भी कितनी ही कोठियां है। हम भी अपने लिए उपयोगी माल लाने वहां क्यों न जाएं ? हमारा एक-एक श्रीमत विलायत जाते वक्त विलायत के प्रवास से प्राप्त धन एक-एक मॉण्टेसरी शिक्षक तैयार करा सकता है और निश्चय कर ले तो गरीबों के लिए अपनी निजी एक-एक मॉण्टेसरी पाठशाला चला सकता है। मुझे विश्वास है कि आने वाले एक दशक में बालक-शिक्षण निष्णात स्त्री-पुरुषों की संख्या बहुत अधिक बढ़ जाएगी।

हमारी दक्षिणामूर्ति संस्था में चलने वाला अध्यापन-मंदिर कितना छोटा है। कितना कोने में पड़ गया है। जिस दिन गुजरात एक केंद्रवर्ती विशाल मॉण्टेसरी अध्यापन-मंदिर की मांग करेगा तभी मैं समझूंगा कि यहां के निवासियों के मन में बालकों का अत्यधिक महत्त्व है। वे उन्हें मिट्टी के पुतले मात्र नहीं समझते अपितु भगवान् द्वारा प्रदत्त बहुमूल्य वरदान समझते हैं। गुजरात की राजधानी में स्वतंत्रता का महामंत्र प्रदान करने वाली शिक्षण संस्था का महत्त्व गुजरात समझ लेगा और जब उसका

लाभ हासिल करने के लिए पूरा गुजरात उमड़ पडगा तभी यहा के बालको की हर प्रकार की गुलामी का नाश हो जाएगा। उस समय नये गुजरात का उदय होगा। अनेक लोगो को मॉण्टेसरी अध्यापकों की आवश्यकता पडेगी। राज्यों से मॉण्टेसरी शिक्षको की मांग आने लगी है। विदेशों से भी मॉण्टेसरी शिक्षको की मांग आ रही है। तव यह ऐसे कहा जाएगा कि स्थान-स्थान पर मॉण्टेसरी पाठशालाओं और शिक्षको की जरूरत नही है। पर यह काम सिर्फ अध्यापन-मंदिर ही कर सकेंगे।

हमारे लिए अधिक महत्त्व का एक काम और है और वह है हमारी गुजराती जनता को सुशिक्षित करने का, मॉण्टेसरी-पद्धति की तैयारी के लिए भूमिका बनाने का। सपूर्ण गुजरात मे बाल-जीवन, बाल-विकास वे बाल-शिक्षण की नूतन दृष्टि को हम तभी फैला सकेंगे कि जब अनेक बाल-शिक्षण-सेवक मिशनरी की भांति बाल-शिक्षण का संदेश गांव-गाव तक फैलायेंगे और अनपढ़ जनो की आखे खोलेंगे। मॉण्टेसरी सघ में ऐसे प्रचारको का उल्लेख देखने में नहीं आया। पर इस काम को संघ सभाल सकता है। बल्कि गुजरात एक विशालकाय सस्था का संचालन कर सकता है। माता-पिता के लिए उपयोगी लाखों पेमफ्लेट और पुस्तके गुजरात मे रोजाना उन तक पहुचाई जानी चाहिए। नागरिको के अंधकार को दूर करने के लिए दुनिया भर मे यही उपाय काम में लिया जाता रहा हे। और जिस तरह से हम अपना व्यापार फैला रहे है बढ़ा रहे हैं। उसी तरह बाल-शिक्षण के इस सदेश का भी प्रसार-प्रचार किया जाना चाहिए। ऐसे लोग मिल जाएगे, ऐसा मुझे विश्वास है और कार्यकर्त्ता जुटाने के लिए धन की चिता कभी सामने रही नही। हमारा जन-समाज बड़ा ही कद्रदान है। जिस श्रीमंत ने अपने नाम को प्रच्छन्न रखकर 'वसत बाल-शिक्षण प्रचारमाला' हमें प्रदान की, ऐसे हीरालाल अमृतलाल की यहां कमी नही है। मुझे विश्वास है कि 'वसंत माला' के जैसी कितनी ही बाल-शिक्षणमालाए हम शुरू करेंगे, और पुनः निवेदन करता हू कि इसके लिए पैसो की कमी नहीं रहेगी।

मॉण्टेसरी के उपकरण भी हमे चाहिए। सौभाग्य से श्री चमनलाल वैष्णव की देखरेख में हम मॉण्टेसरी के उपकरण प्राप्त कर पा रहे हैं। यहां

मे कहना चाहता हू कि 'नकली माल से सावधान' रहें। मॉण्टसरी के उपकरणों की माग है और इनसे पैसा मिलता है, अत: कारीगर अपनी इच्छानुसार उपकरण बना देंगे। पर ध्यान रहे कि मॉण्टेसरी के उपकरण वैज्ञानिक प्रयोग के उपकरण है। ये सुधार से नही, कारीगर द्वारा ही बनाए जा सकते हैं। कारीगर के पीछे भी श्री चमनभाई जैसा अध्ययनशील सस्कारी व्यक्ति होना चाहिए।

हमारी एक अन्य आवश्यकता है ब्यूरो ऑफ मॉण्टेसरी लिटरेचर याने बाल-शिक्षण की प्रगति से बराबर अवगत करने रहने वाली सस्था। मे जानता हू कि श्री भोगीलाल ठाकुर इस काम को करने का जिम्मा ले चुके हैं। मुझे उनसे इस दिशा मे बहुत उम्मीदें हैं।

पर हमें बालक के माता-पिता को नही भुलाना चाहिए। उन्हे बाल-शिक्षण की दृष्टि देने का प्रयत्न किये बिना हम उन्हे उलाहना भी केसे दे सकते हैं। वास्तविक शिक्षा-गुरु तो माता-पिता हैं और घर पहली पाठशाला। अतएव माता-पिता के लिए अध्यापन-मदिर खोलने पर विचार मनोरंजन होते हुए भी महत्त्वपूर्ण है। मैं तो अल्प संख्या मे अपने बच्चों को गोदी मे लिये बैठे माता-पिताओ को पढ़ाता हूं और मैं तथा माता-पिता व्याख्यान के बीच में बालकों की 'ऐ-ऐं' की बाधा को सहन कर लेते हैं। मुझे पता है कि श्री दक्षिणामूर्ति संस्था माता-पिता के लिए अध्यापन-मंदिर खोलने का इरादा कर रही है। उसका यह मनोरथ शीघ्र पूर्ण हो। इस तरह से गुजरात अनगिनती माता-पिताओ को पढने की सुविधाएं शीघ्रतिशीघ्र प्रदान कर सकेगा।

अब जरा मॉण्टेसरी-शिक्षकों पर गौर करें। उनसे मेरा अनुरोध है कि अभी हम कम संख्या में हैं। वही-वहीं अडिग भाव से खड़े रहे। मुझे आप लोगों में अथाह विश्वास है। मुझे भरोसा है कि आप निश्चल भाव से मॉण्टेसरी-पद्धति की साधना करेंगे, धन का लालच नहीं करेंगे। आपका पद अपने आप ही ऊचा है। आपकी प्रवृत्ति स्वतः ही कल्याणकारी है। आप नम्रतापूर्वक बालक के साथ अपनी प्रगति साधते हुए जीवन को सार्थक बनायेंगे। आपका भविष्य उज्जवल है।

मैं बहुत बोल गया। पर बोलते-बोलते हम यहां पर जिसके निमित्त

एकत्र हुए है और जिसके लिए यह समारंभ हुआ है, उस बालक को नही भूलेंगे। हमारे लिए तो वह कहीं भी बाधक नजर नही आता। हाथ-पाव छोटे-छोटे है, उसके, और इंद्रियो का अभी पूरा विकास हुआ नहीं है। उसकी भाषा बन रही है, बुद्धि खिल रही है, पर उसकी आत्मा महान् है। उसकी विकास-शक्ति अमर्यादित है। बालक को हम न भूले, क्योंकि वही हमारी आशा है, हमारी अनत चिरजीविता है, हमारा सर्वस्व है। वह हमेशा हमारे आगे रहे और हम उसके पीछे। उसे विकास के हर अधिकार है और इसका उत्तरदायित्व हमारा है। हमे भविष्य मे उसके पीछे जाना चाहिए और उसके साथ-साथ हमें अपना भविष्य गढ़ना है। हमारी समस्त जीवन-प्रवृत्तियो मे बालक हमारी नजरो के सामने रहना चाहिए।

अतएव बालक को उचित स्थान देने-दिलाने के लिए, आइए, हम कमर कसे, हथियार थामें और युद्ध करें। आइए, बालक के बीच आने वाले अवरोधों को हम हटा दे। बालक के लिए, बल्कि स्वयं अपने लिए आइए, हम इस दुनिया को अस्थिर कर डालें, व्यथित और अशात कर दे। बालकों के अधिकारों के निमित्त शिक्षकों और अभिभावकों द्वारा छेड़ा हुआ युद्ध भले ही इतिहास में न लड़ा गया हो, पर हम लड़ेंगे। इस युद्ध में हम जात-पात भुला दे, रंगभेद भुला दें और एकमात्र बालक के ही लिए, समग्र मानव जीवन की उम्मीद के लिए, समग्र मनुष्य जीवन की मनुष्यता के परिणाम के लिए विजयी युद्ध करें। यह युद्ध हमारी संकीर्णता, हमारे मताग्रह, हमारे अज्ञान, हमारी गुलामी, हमारे भेदभाव और हमारी नास्तिकता के विरुद्ध लड़ना है हमे। पहले हमें इनसे मुक्त होना पड़ेगा, तभी बालक के प्रति हमारा युद्ध पूरा होगा। और हमारे जीवन का कर्त्तव्य भी तभी पूरा होगा। आइए, हम एक होकर अपने इस कार्य की सिद्धि के लिए प्रार्थना करें कि तेजोमय हमें तेज दे, चेतनमय हमे चेतना दे, अनत विजय हमें विजय दे।

●●

बालक डरपोक क्यों बनता है ?

'कुसुम बहन ! जरा दूर जाकर पेशाब करो, तो अच्छा रहे !'

'नहीं, नहीं ! मै दूर जाऊं, तो बावाजी मुझको ले न जाए ! मा कहती थीं कि दूर जाने पर बावाजी ले जाते हैं। दूर जाना ठीक नही।'

सुनकर मैं तो सन्न ही रह गया। पता नहीं, मां-बाप अपने बालको को इस तरह क्यों डराते हैं ?

लेकिन बालको को डराना तो एक मामूली बात बन चुकी है। मा-बाप समझते ही नहीं कि इससे कोई हानि भी होती है।

बालक ने बर्फ खाने की जिद शुरू की। किसी भी उपाय से उसकी जिद खत्म नही हुई। मा ने कहा, 'बेटे, तुम चुप होते हो या नहीं ? तुम चुप न हुए, तो मै तुमको चींटों की कोठी मे डाल दूंगी। नही तो इस अंधेरी कोठरी मे बद कर दूगी। मैं तुमको उस काले नाले पास छोड आऊंगी। इतने पर भी तुम चुप न हुए तो मै सिपाही को बुला लूगी।'

मा ने अपनी मुन्नी को गहने पहनाए। मुन्नी को खेलने जाना है। काका कहते हैं, 'मुन्नी ! खबरदार ! तुम बाहर मत जाना। बाहर जाओगी, तो बावाजी तुमको उठा ले जाएंगे। तुमने उस काबुली को तो देखा है न ? वह छोटे बच्चों को अपने बडे पाजामे में छिपाकर ले जाता है।'

न जाने किसी कारण से छोटा बच्चा रात में रोना शुरू कर देता है। मा थप्पड़ मारकर उसको डराती और कहती है, 'बेटे, तुम सोते क्यों नही हो ? सुनो। वह सियार बोल रहा है। मै तुमको सियार के सामने डाल दूगी। सियार तुमको खा जाएगा !'

रात में बड़े बच्चे खेलने निकलते हैं। दादी मां कहती हैं, 'बच्चो !

सुनो, उस पीपल के पास मत जाना। वहा एक भूत रहता है वह तुमको खा जाएगा।'

बाप ने अपने बेटे को पीटा है। बेटे को रोते देखकर बुआजी कहती हैं, ''लल्लू ! तुम मुंह फाडकर रो रहे हो। अभी बिच्छू आकर तुम्हारे खुले मुंह मे डक मार देगा, समझे !'

बारिश आई। लडका नहाने दौडा। दीदी बोली, 'बाबूजी को आने दो। तुम्हारी हड्डी-पसली दुरुस्त करवा दूगी !'

छोटे काका कहते हैं, 'सुनो, रमेश ! अपना सबक याद करो। नही तो मैं तुमको तुम्हारे शिक्षक से पिटवाऊगा।'

दादीजी कहती है, 'सुनो, उस कुएँ के पास मत जाना। अगर गए, तो मर ही जाओगे !'

हरदास बाबा कहते है, 'अरे, तुम इस कुत्ते के साथ खेल रहे हो ? कुत्ता तुमको काट लेगा, समझे !'

मां-बाप कहते हैं, 'बेटे, तुम झूठ बोलोगे, तो नरक में पड़ोगे और तुम कोढी बन जाओगे !'

मां कहती हैं, 'बेटे, इन हनुमान जी के पैर छुओ। नहीं तो ये तुम पर नाराज हो जाएंगे !'

पिताजी कहते हैं, 'बच्चों ! गांधीजी की जय मत बोलो। वंदेमातरम् बोलने पर सरकार हमको जेल मे बद कर देती है !'

कितने प्रकार के और कैसे-कैसे डर ! बाबाजी का डर, भूत-प्रेत का डर, बाघ और भेडिये का डर, सिपाही और शिक्षक का डर, सरकार का डर, चारों तरफ डर, डर और डर ही डर ! नतीजा यह होता है कि इस डर के कारण बालक निरा नामर्द, कायर, डरपोक, नादान और नासमझ बन जाता है।

'तुम दूर जाओगे, तो बाघ तुमको खा जाएगा।' बचपन में यह डर शुरू होता है। बड़ा होने पर बालक अपने शिक्षक से डरता है। जो शिक्षक से डरने लगता है, वह सिपाही से भी डरता है जो सिपाही से डरता है, वह सरकार से डरने लगता है। सरकार उसके लिए शेर और बाघ की तरह

भयावनी बन जाती हे

वचपन में बालक अधेरे से डरने लगा। कुछ बड़ा होने पर भूत का डर शुरू हुआ। आगे वह प्रेत से डरने लगा। फिर डाकिन-पिशाचिन का डर लगने लगा। यों होते-होते वालक भगवान से भी डरने लगा। इस तरह डर की एक लंबी परंपरा शुरू हुई। डर हमारे शरीर को नि.सत्व बना देता है। वह मन को निर्बल बनाता है। डरा हुआ बालक अपनी आंखें मूंद लेता है वह बलहीन बन जाता है। उसकी छाती धड़कने लगती है। उसके शरीर से पसीना छूटने लगता है। वह डर के मारे टट्टी-पेशाब भी कर देता है। डर के मौके पर हम बालक के मुंह की तरफ देखेंगे और उसकी छाती पर हाथ रखेंगे, तो हमको डर की भयंकरता का पता चल सकेगा।

एक बार मेरे घर के पाट पर बैठा चूहा बोल रहा था, 'चू-चूं-चू। चूहे को चुप करने के लिए मैं एक खिड़की के पास गया और जोर की आवाज के साथ उसको दीवार से टरा दिया ' मानो मैं चूहे का सामना करने निकला होऊं, ऐसी मुद्रा में मैंने सी-सी की आवाज के साथ जोर से सीटी बजाई। मेरे हाथ में दो साल की टीकू थी। मेरे जानते इससे पहले वह कभी चूहे की 'चूं-चू आवाज से डरी नहीं थी। लेकिन चूहे को भागते समय मेरा जो स्वरूप बना, जिस जोर के साथ खिडकी टकराई, जैसी गुस्से-भरी आवाज में मैंने सीटी बजाई, इसके कारण कुल मिलाकर दृश्य ऐसा खड़ा हुआ, मानो मैं किसी भारी भय का सामना कर रहा होऊ। मेरे इस व्यवहार के कारण टीकू के मन पर भय की गहरी छाप पड़ी। जिसके लिए पहले उसके मन में कोई डर कभी रहा नहीं, आज उसी से वह डर गई। उसके चेहरे पर भय के सारे लक्षण प्रकट हो गए। उस समय तो उसकी तरफ मेरा ध्यान अधिक गया नहीं। किंतु थोड़ी देर के बाद मैंने देखा कि जिस तरह किसी भय के अवसर पर प्राणी अपनी आंखें बंद करके और यह सोचकर कि जो होना होगा, सो होता रहेगा, वह औंधे मुंह सो जाता है, उसी तरह धुले हुए कपड़े पहने टीकू अपनी आंखें मूंदकर औंधे मुह सो जाता है, उसी तरह धुले हुए कपड़े पहनी टीकू अपनी आंखें मूदकर औंधे मुंह सोई हुई है। पूछताछ करने से तुरंत ही पता चला कि

वह चूहे से डर रही थी। डर के कारण इतनी खुली जगह मे भी वह अपनी आखे बंद करके छिप-सी गई थी।

मुझको अपनी गलती का भान हुआ। मै टीकू को फिर खिडकी के पास ले गया। उसका डर दूर करने के लिए मैने उससे कहा, 'टीकू ! वह तो एक चूहा था और मैं उसको भगा रहा था।' लेकिन उसका डर दूर नही हुआ। जैसा कि मैं पहले लिख चुका हूं, चूहे को भगाने के मेरे तरीके की वजह से टीकू चूहे से डर गई थी। बाद में दीवार की तरफ देखकर वह 'चूहे' का नाम लेती और डर जाती। वह पालने में लेटी होती, तो दीवार की तरफ देखकर घबरा उठती। खटिया पर बैठी होती, तो चूहे के डर से वह मेरे पास जाती और चुपचाप पड़ी रहती। उसकी आंखें फटी के फटी रह जातीं। वह न हिलती, न डुलती। आखिर जब मैंने उसको विश्वास दिलाया कि चूहा भाग गया है, मैंने उसको निकाल बाहर किया है, अब वह यहां है ही नहीं, अब तो वह 'चूं-चूं' भी नही बोल रहा है, तभी उसके मन का डर निकला और उसको डर से छुटकारा मिला।

अक्सर यह होता है कि जिस विषय में डर का कोई कारण रहता ही नही, ऐसे विषय में भी हमारे अपने अटपटे व्यवहार के कारण ही बालक डरना सीख जाता है। घर में कुत्ते को बेधड़क भगा देते हैं, तो बालक भी उसी तरह कुत्ते को भगाना सीख जाता है। लेकिन अगर मा या भाई कुत्ते को देखकर मारे डर के चीखने-चिल्लाने और भागने लगेगे, तो बालक भी कुत्ते से डरना सीख जाएगा। अपने घर के बड़ों को अधेरे में झिझकते देखकर, या 'मुझको तो डर लग रहा है', कहते सुनकर, या उनको डर के कारण भागते देखकर बालक भी डरना सीखता है। जब घर के बड़े-बूढे अपने भयावने चेहरे और भयभीत आवाज के साथ बालकों को भूत-प्रेत की या दूसरी कहानियां खुद भी डरते-डरते सुनाते है, तो इससे बालक डरना सीखता ही है।

बालक में डर स्वाभाविक होता है। परवशता और अज्ञान इस डर के कारण होते हैं। इस डर का इलाज करने के बदले, जहां सचमुच डर का कोई कारण नहीं होता, वहां हम ही डर का बालक को डरने वाला बना

देते है ऐसा करके हम बालक को नुकसान ही पहुचाते है। बिच्छू के निकलने पर 'बिच्छू ! बिच्छू' चिल्ला कर हम भागें नहीं और थर-थर कापें नही, बल्कि फुर्ती के साथ हाथ से संड़ासी लेकर हम हिम्मत से बिच्छू को पकड़ लगें, तो बालक समझ जाएगा कि इसमें डरने की कोई बात है ही नहीं। सिर्फ थोड़ी होशियारी बरतनी जरूरी है। जिनसे डरना जरूरी है, ऐसे शेर, बाघ या सांप का सामना भी बिना डरे किस तरह किया जा सकता है, इसकी बातें कहने से और ऐसे अवसरों पर अपनी रक्षा का ध्यान रखते हुए निडरता दिखाने से, बालक वास्तविक भय की स्थिति में भी बिना डरे अपनी रक्षा करना सीख सकेगा। राक्षस की बात भी बालक के सामने इस तरह रखी जाए कि यदि हम मे बल हो, तो हम राक्षस को मार सकते हैं, तो बालक राक्षस के डर से बच सकता है। कहने का मतलब यह है कि जिन प्रसंगों या अवसरों पर सचमुच डरने की कोई बात नहीं होती। ऐसे अवसरों पर भी, हमारे अपने व्यवहार के कारण ही बालक डरने लगता है। ऐसा न हो, इसके लिए हमको जरूरी सावधानी रखनी चाहिए। इसके अलावा, सुरक्षा की दृष्टि से जहां-जहां सावधानी बरतना जरूरी है, वहां निडर बनकर सावधानी कैसे रखी जा सकती है, इसकी सही जानकारी बालक को दे दी जाए, तो संकट के समय में डरकर भागने के बदले या भय की शरण में जाने के बदले बालक भय से अपनी रक्षा स्वयं ही कर सकेगा।

●●

बालक का दृष्टिकोण

'सुनो, दिनु ! यह खड़िया मिट्टी किसने बिगाड़ी ?'

दिनु ने कहा, 'मैंने तो खड़िया मिट्टी से चित्र बनाए हैं।'

मां पूछती हैं, 'सुनो, विजया ! वहां बैठी-बैठी बर्तनों को क्यों पछाड़ रही हो ?'

विजया ने कहा, 'मां ! मैं बर्तन पछाड़ नहीं रही हूं। मैं तो उनकी आवाज सुन रही हूं।'

'क्यों भैया ! तुम इन खिलौनों को क्यों तोड़ रहे हो ?'

'जी, मैं इनको तोड़ नहीं रहा। मैं तो देख रहा हूं कि इनके अंदर क्या है ?'

'सुनो, रमेश ! तुम वहां निठल्ले क्यों बैठे हो ?'

'जी, मैं निठल्ला नहीं बैठा हूं। मैं तो यहा यह देख रहा हूं कि ये चींटियां अपने बिलों में कैसे जा रही हैं।'

यदि हम माता-पिताओं और बालकों के बीच होने वाली बातचीत को कभी कान देकर ध्यान से सुनेंगे, तो हमको ऐसे अनेक संवाद सुनने को मिलेंगे।

जब हमारे बालक हमको इस तरह के अटपटे जवाब देते है, या तो हम उनके इन जवाबों पर ध्यान ही नहीं देते, या इनको बालकों की बालिशता मानकर उनकी ऐसी बातों को हंसी में उड़ा देते हैं। अक्सर बालको के ऐसे जवाबों से हम चिढ जाते हैं और उनको डांट-डपट देते हैं। लेकिन हम इस बात पर शायद ही कभी ध्यान देते है कि बालको ने ऐसे जवाब क्यो दिए ?

यदि हम इस पर थोड़ा विचार करेंगे, तो हमको पता चलेगा कि हमारी और। बालक की दृष्टि में कहां और कैसा अतर है। किंतु इस तरह सोचने के लिए हमारे पास न तो फुर्सत है और न हमको इसकी कोई परवाह ही है। हम तो मानते है कि भला, बालकों की ऐसी निकम्मी बातों के बारे में सोचा भी क्या जाए ? अपनी उतावली के कारण, या अपने बड़प्पन के कारण, हम अपने बच्चो की बातों को सुना-अनसुना कर देते है और बालको की सही मंशा को समझने के बदले उनकी बातों में अपने विचारों का आरोपण करके, अपने इन आरोपित विचारों के लिए हम बालकों को डांटते-डपटते रहते हैं।

जब बालक खड़िया मिट्टी का उपयोग करता है, जो हम उसको उसका दुरुपयोग मानते हैं, क्योंकि हमारी निगाह में तो उसका अमुक एक प्रकार का उपयोग ही सही उपयोग होता है। खड़िया मिट्टी से बालक जो टेढ़ी-तिरछी लकीरें खींचता है, हमारी निगाह में वे निरर्थक होती है, जबकि बालक की निगाह में वे उसके बनाए हुए चित्र हैं। हमको इसमें अपव्यय दीखता है, जबकि बालक की दृष्टि मे यह खडिया मिट्टी का कीमती उपयोग है। बालक जूतों से खेलते हैं। वे उनको एक कतार में रखते हैं। उनमें अपने पैर डालकर चलते हैं। दूसरों के जूते पहनकर वे मन-ही-मन मुस्कराते हैं। हम उनके इस काम में असभ्यता, गंदगी और गलती देखते हैं। बालकों की दृष्टि में जूते ऐसे साधन हैं, जिनसे वे एक-दूसरे की तुलना करते हैं, एक-दूसरे के बीच का फर्क पहचानते है, उनके माप का अंदाज लेते हैं, हल्के और भारी का भेद पहचानते हैं। जूतों के साथ खेलकर बालक उनके छोटे या बड़े होने का अंदाज लेते हैं। बालक खुद ऐसे जूते पहनकर चलते हैं और चलते-चलते गिरने और उठने का आनंद लेते हैं। इस खेल से उनको अपने शरीर पर अपने काबू का पता चलता है। जूतों के फीते बांधने-खोलने और बटन लगाने और खोलने में उनकी आंखों को और अंगुलियों को कसरत का लाभ मिलता है।

इस तरह देखें, तो बालकों की दृष्टि से उनके छोटे और निरर्थक-से

कामों में भी बहुत अर्थ भरा रहता है, जबकि हमको उनमे कोई अर्थ दीखता ही नहीं। असल दृष्टि हमारी नही पर बालक की होनी चाहिए। बालक की दृष्टि से ही हमको उसकी गतिविधियो को देखना और समझना चाहिए। जिसके पास अपनी आंख है, उसके पास अपनी दृष्टि भी होनी चाहिए। जिसके पास अपनी जीभ है, उसको अपना स्वाद का ख्याल रखना चाहिए। जिसके पास बुद्धि है, उसको अपनी बुद्धि के उपयोग का महत्त्व समझना चाहिए। जो दूसरों को अपनी आंख देकर उनकी आंख बंद कर देते हैं, जो दूसरों को अपनी बुद्धि का अस्तर देकर उनकी बुद्धि को ढक देते हैं, वे दूसरों की उन्नति के द्रोही होते हैं। हमारा कर्त्तव्य है कि हम बालक की दृष्टि को समझें। इसी में बालक का उद्धार निहित है। जगत् को और जीवन को देखने-समझने की बालक की भी अपनी एक दृष्टि के विकास में बाधक न बनें, बल्कि सहानुभूतिपूर्वक दें, तो हम बालक को उसकी दृष्टि से समझ सकेंगे और बालक भी हमारी दृष्टि को समझ सकेगा। इस तरह एक-दूसरे के अधिक निकट आएंगे और इस कारण दोनों अधिक आगे बढ़ सकेंगे।

●●

बालक और मेहमान

घर की छोटी-सी दुनिया में छोटे बच्चों की निगाह में नया आदमी 'मेहमान' होता है। यह मेहमान बालकों का ध्यान तुरंत ही खींचता हैं यह बालकों की कौतूहल-वृत्ति को जगाता है और बालकों के लिए अध्ययन-रूप बन जाता है। परिणाम यह होता है कि मेहमान बालकों को जागृत बना देता है, उन पर अपनी भली-बुरी बातो को प्रभाव छोड जाता है और बालकों के कोमल जीवन में तात्कालिक और कई बार स्थायी हानि के बीज बो जाता है।

मेहमान को अपने माता-पिता का परिचित, मित्र, रिश्तेदार अथवा स्नेही समझकर बालक उसके पास जाते हैं। वे उसके साथ बातचीत करते हैं। उसको अपनी बाते कहते हैं। अपने घर की बाते भी कहतें है। अपनी मां की और अपने पिता की बातें भी कहते हैं। इनके अलावा, वे मेहमानों से उनकी बातें भी सुनते हैं।

बालक समझते नहीं मेहमान उनके साथ जो बर्ताव करते हैं, वह इष्ट है या अनिष्ट है। मेहमान उनसे जो बातें कहते हैं, वे अच्छी मानी जाएं या बुरी मानी जाएं ? मेहमान उनके साथ जैसा व्यवहार करते है, वह व्यवहार अच्छा माना जाए या बुरा माना जाए ? क्योंकि बालक तो मेहमानों पर पूरा विश्वास रखकर उनको अपना ही मानते हैं। इसके अलावा, चूंकि मेहमान एक नया ही व्यक्ति व्यक्ति होता है, बालकों को उसकी सारी बातें नई ही लगती हैं। इस नवीनता के कारण बालक उन बातों को देखने और समझने के लिए ललचाते हैं। अबोध बालकों को पता नहीं रहता है कि नई चीजें अच्छी भी नहीं होतीं। अक्सर वे भयंकर

होती है।

मेहमान बालकों को जबर्दस्ती अपने पास बुलाते हैं। वे उनके हाथ पकड़ते हैं। उनको गुदगुदाते है। उनको गोद में बैठाते है। वे उनको कुदाते और नचाते हैं। यह बात अलग है कि ये सारी बातें मेहमानों के अधिकार क्षेत्र के बाहर होती है। किंतु भोले और भले बालक मान लेते हैं कि चूंकि ये उनके पिताजी, दोनों उनका सम्मान करते हैं, इसलिए वे अच्छे तो होगे ही। मेहमान जो कुछ भी करते होंगे, अच्छा ही न तो किसी से कुछ कह सकते हैं, न बोल ही सकते हैं।

कई मेहमान बालकों को त्रासदाक लगते है वे उनकों बेढ़ंगे और जंगली-से दिखाई पड़ते हैं। संस्कारशील बालक ऐसे मेहमानों से दूर ही रहते हैं फिर भी मेहमान उनको अपने पास बुलाते है। वे उनके साथ खेलते भी हैं। ऐसी स्थिति में या तो बालक गुमसुम बन जाते हैं या फिर कभी-कभी वे रोने भी लगते हैं। उस समय उल्टे मां-बाप ही अपने बालको से कहते हैं, 'देखो, ऐसा मत करो। बेटे, तुम इनसे बातें करो। ये तो अपने अमुक हैं। तुम इनसे उसे मत। रोओ मत।'

यदि बालक अपने माता-पिता को इन मेहमानों की बुराइयों की, इनकी बाते समझा सके होते, तो मां-बाप की आखें तुरंत ही खुली होती और वे अपने बालकों को ऐसे मेहमानों से बचा सके होते।

बालक मेहमानों की बदबू को तुरत ही पहचान लेते हैं। वे भले और बुरे मेहमानों में फरक कर सकते हैं और उसी के हिसाब से वे उनसे अपनी पहचान बढ़ाने के लिए राजी या नाराज रहते हैं। तिस पर जब एक बार वे इन मेहमानों की बुराई के शिकार बन जाते हैं, तो वे भी ऐसे मेहमानो को चाहने लगतें है और उनके बीच रहना पंसद करते हैं। इसके बाद तो बालक अपने ऐसे कई मेहमानों से, अनजाने ही, चरित्रहीनता की भयंकरता का अस्पष्ट-सा परिचय प्राप्त करते हैं और न समझते हुए भी वे उसमें एक प्रकार के आनंद का अनुभव करने लगते हैं।

बालकों को इस प्रकार का 'लाभ' अपने यहां आने वाले सब मेहमानों से तो नहीं मिलता। किंतु कुछ हल्के प्रकार के मेहमान ऐसा लाभ

देने की शक्ति रखत ह

यदि हम मेहमानों को अलग-अलग श्रेणियो में बांटे, तो मित्र, सगे-सबधी, काम से या बिना काम भी आते-जाते रहने वाले आढतिए, परिचय-पत्र लेकर आए हुए यात्री, आदि के रूप में उनकी कुछ श्रेणिया बनेगी। अंग्रेजी मे एक कहावत है, 'भगवान हमको हमारे मित्रों से बचाए !' हम इस कहावत को अधिक अच्छी तरह इस रूप में समझ ले, 'भगवान् हमारे बालको को हमारे मित्रों से बचा ले !' हमारे मित्रो से मतलब है, अधिक निकट के, विशेष अधिकार रखने वाले और विशेष रूप से सम्मान-योग्य व्यक्ति। यदि वे बीड़ी पीते-पीते हमारे बालको को खेलाएंगे, तो बालकों को उनका धुआं सहन करना ही होगा ! यदि वे अपने बदबूदार मुंह से बालकों को चूमें, तो बालक उनको चूमने दें ? वे बालकों की पीठ थपथपाएं, तो बालक उनको थपथपाने दें ? वे बालको को अपने दो पैरों के बीच जोर से दबाएं, तो बालक उनको दबाने दे ? माता-पिता अपने मित्रों को उनकी इन बुरी आदतों से जरूर ही मुक्त करा दे ।

बालको को अपने रिश्तेदारों और मेहमानों की भावना का अधिक लाभ देते रहना जरूरी नहीं है। माता-पिताओं को समझ लेना चाहिए कि ये लोग हमारे बालकों पर अपना जो पारिवारिक अधिकार रखते रहे है, उसका पट्टा अब खत्म हो चुका है। वे इस बात का भी बराबर ध्यान रखें कि बालक कभी यह न समझ बैठें कि उनके रिश्तेदार लोग आदर्श-रूप हैं। अपने ऐसे मेहमानो की आदतों और विचारों आदि के विषय में हम घर में बालकों के सामने खुली चर्चा करते ही रहे। माता-पिता इस बात की विशेष चिंता रखे कि रिश्तेदार लोग बालकों से ऐसी बातें करना बद ही कर दें, जैसे, 'तुम्हारी मां ऐसी हैं। तुम्हारी मौसी ऐसी है। अमुक बहन ने अमुक भाई से यह कहा था। जब तुम छोटे थे, या तुम्हारी इस मुन्नी की उमर दूध पीने की थी, उस समय यह घटना घटी थी। और वह घटना यही थी, जब तुम्हारे पिताजी और माताजी का विवाह हुआ, उस समय हमने आत्मीयता और हमारे आतिथ्य के अधिकारी तो हैं, किंतु बालको

के साथ वातचीत करने का उनका जो परंपरागत अधिकार रहा है, अब अतिथि-सत्कार की सूची मे से उसको हटा देना चाहिए।

हमारे घर आने-जाने वाले आढतियों, जैसे लोगों और यात्रियों आदि के साथ हमारे बालको की कोई जान-पहचान होनी ही नहीं चाहिए। हम अपने बालकों को स्पष्ट ही कह दे कि वे उनके साथ अपना संपर्क न बढाए। वे न तो उनके पास जाएं और न उनके पास बैठे। हम अपने बालकों को इस तरह संभालें और अपने मेहमानों की ऐसी व्यवस्था करे कि इन दोनों के वीच जान-पहचान बढाने की कोई गुंजाइश ही न रहे। हम धीरे-धीरे अपने बालकों की संस्कारिता का विकास इस ढंग से करें कि जिससे वे मेहमान और मेहमान के बीच के सूक्ष्म भेद को स्वयं समझने लगे इस विषय में बालको के साथ बार-बार बात करते रहने से और उनके व्यवहार को दिशा देते रहने से बालकों में इस प्रकार की समझदारी उत्पन्न हो सकेगी। बालक अभिमानी न बनें, नफरत-पसंद न बनें, अतिथि के प्रति उनके मन में घृणा की भावना न जागे। बालकों के मन में कम-कम से यह बात बैठा देनी चाहिए कि अमुक लोगो के साथ वे एक दम घुल-मिल न जाएं, या अमुक लोगों के साथ उठना-बैठना शुरू न कर दे। उनको यह बात भी जंचा देनी चाहिए कि ऐसा करना उनकी अपनी मर्यादा से नीचे की ही बात होगी। प्रत्येक विचारशील और संस्कारी माता-पिता स्वय ही सोच-समझ लें कि उनको यह काम किस रीति से करना है।

आढ़तियों और यात्रियों की श्रेणी वाले मेहमान हमारे प्रति अपना प्रेम या अपनी कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए हमारे बालकों को खेलाते है, भेंट या उपहार-स्वरूप उनको कुछ चीजें देते हैं, अथवा उनको अपने साथ कही घुमाने ले जाना चाहते हैं। इस विषय में हमारा रुख बहुत ही साफ और सख्त रहना चाहिए। हमें ही अपने मेहमानों को स्पष्ट रूप से मना कर देना चाहिए। ऐसी स्थिति में बालकों के रुख का ध्यान रखना जरूरी नहीं होता, क्योंकि वह रुख तो मेहमानों द्वारा खड़ा किया हुआ होता है और बनावटी होता है। बालकों को जिस चीज की जरूरत हो, वह चीज

हम उनको लाकर दे दें और अगर वे चाहें, तो हम उनके घुमाने भी जाए, लेकिन अपने मेहमानों को हम ये सारे काम न करने दें। अक्सर देखा गया है कि इसके कारण बालक लोभी और लालची बन जाते हैं। जो चीजे उनको अपने माता-पिता से नहीं मिलती, उन चीजो को वे दूसरे जरियो से पाने की कोशिश करते हैं और इस तरह वे अपने को गिरा लेते है।

चिंता नहीं, यदि हमारे बालक मिजाजी दिखाई पडे। चिंता नहीं, यदि हम स्वयं अभिमानी दिखाई पड़ें। किंतु हम अपने बालकों को हर किसी मेहमान के साथ घुलने-मिलने और खेलने-भटकने की स्वतंत्रता तो कदापि न दें। हां, हम बालकों को अपने मेहमानों की छोटी-छोटी सेवा के काम जरूरत के हिसाब से सौप सकते हैं। जैसे, हम उनसे कहें कि वे मेहमानों को बुलाने जाते समय हम उनको कभी-कभी अपने साथ ले जाएं और इस प्रकार हम उनमें अतिथि-सत्कार की और अतिथि के महत्त्व की भावना अवश्य ही जगाएं। किंतु किसी भी परिस्थिति मे बालको को अपने मेहमानों का शिकार तो कभी बनने ही न दे।

हम सब एक-दूसरे के घर मेहमान बनकर जाते-आते रहते हैं। यदि हम अपने बालकों के प्रति अपने रिश्तेदारों के बालको के लिए हमारे मन में ममता रहती है और रहनी भी चाहिए।

हमको उसका पोषण भी करना चाहिए। हमारे मित्रों के बालक धीरे-धीरे हमारे बालकों के भी मित्र बनें, यह मित्र-परंपरा या नाते-रिश्ते की परपरा आगे बढ़े, तो यह स्वागत-योग्य ही है। इस दृष्टि से हम अपने बालकों की मित्रता को बड़ी सावधानी के साथ, आदरपूर्वक और कुशलतापूर्वक बढ़ाते और पुष्ट करते रहें। यदि मित्रों के बालक हमसे दूर-दूर रहते हैं, तो हम उसका बुरा न मानें। यदि मित्रों के बालक, अथवा कुलीन परिवार वाले हमारे सेठ के बालक हमारे साथ खेलते हैं, हमसे घुलते-मिलते हैं, तो हमको यह सब अच्छा ही लगता है। इसमें हम अपने बड़प्पन का भी अनुभव करते हैं। कितु बालकों के हित की दृष्टि से हम इन सब बातों को छोड़ दे। जिस तरह आज अपने बालको के हित के लिए हम सबको बहुत-कुछ छोडना होता है, बालकों के हित के लिए ही

हमको अपनी योग्यता बढानी होती है, उसी तरह इस काम की दृष्टि से भी जो आवश्यक है, उसको हम जरूर ही करते रहें।

माता-पिता के नाते हम भी अपने मित्रों का सच्चा और सद् उपयोग करते रहें। हम अपने बालकों को अपने मित्रो की कुशलता का, बुद्धि का, कलाप्रियता और संस्कारिता का लाभ अवश्य ही दें। इसके लिए अपने सुयोग्य मित्रों को अपने घर में अधिक निकटता का स्थान देकर हम उनकी कहानियां, नाटको, बातचीत, खेल और मनोरंजन आदि को सुनने और देखने की व्यवस्था अपने बालकों के लिए अवश्य ही करें। कुछ हद तक हमारे बालक भी मनुष्यों के भूखे होते हैं। वे अपने मेहमानों के द्वारा बाहर की दुनिया का अध्ययन कर सकते हैं। किंतु उनकी यह भूख अच्छे और उत्तम आहार द्वारा बुझ सके, इसकी व्यवस्था हमको सावधानी के साथ करनी चाहिए। फिर भी अपने बालकों को अच्छे-से-अच्छे मेहमानो के बीच रख-भर देना और केवल अविश्वास में अंतर होता ही है। हमारे मेहमान हमारे सिर-माथे हैं, किंतु इसके कारण हमारी होशियारी में कोई कमी नही आनी चाहिए।

●●

बालकों का आहार

डॉ. मॉण्टेसरी की मान्यता है कि जब तक घरों में बालकों के आरोग्य को लेकर अज्ञान की स्थिति व्याप्त रहती है, तब यह यही समीचीन होगा कि बालको की खुराक के संबंध में उन्हे पाठशालाओ को सौप दिया जाए। इसी में बाल-विकास का संरक्षण समाहित है। यह बात सिद्ध की जा चुकी है कि बालक के शरीर के स्वभावानुसार उसे पचने योग्य खुराक दी जानी चाहिए। बड़ों को जो दवा दी जाती है वही कम मात्रा में बालकों को देने का कोई अर्थ नही है। इसी तरह बडों को दी जाने वाली खुराक में मात्र परिमाण का अंतर किये जाने से वह खुराक बालकों को देने योग्य नहीं बन जाती। बालक के शरीर की जरूरते अलग होती हें और बड़ों की अलग। भले ही वालकों के घर विद्यालय के पास हो, तब भी घर की बजाय उन्हें विद्यालय में खाना खाना अभीष्ट है। सिर्फ गरीबों के घर-परिवार में ही बाल-अरोग्य का अज्ञान नहीं होता, धनाढ्य लोगों के घरों मे भी यही स्थिति होती है। जब तक धनी-मानी लोगों के घरों में भी विशेष सोच-विचार करके बाल-आहार की समुचित व्यवस्था नहीं की जाती, तब-तक श्रीमंतों के बालको को भी पाठशाला मे खाना-खिलाना अधिक लाभदायी होगा।

बाल-आहार में चर्बी और चीनी पर्याप्त होनी चाहिए। रिजर्वमेटर के लिए चर्बी तथा प्लास्टिक टिश्यू के लिए चीनी महत्त्वपूर्ण होती है। शरीर गठन की प्रक्रिया मे चीनी उत्तेजक वस्तु होती है।

नन्हा बालक चबा-चबाकर नहीं खा सकता। दांतों से काटकर खाने वाली चीजें उसके पेट मे पच नहीं सकतीं। अतः सूप, पूड़ी तथा मीट

बॉल्स संतुलित रूप में बालक के लिए उचित रहेगी।

बालक दो वर्ष का हो जाए तो उसे नाइट्रोजन वाले पदार्थ दिए जाने चाहिए। इसमे खासतौर पर दूध तथा अंडे जरूरी हैं। तीसरे वर्ष से उन्हे 'ब्रोथ' भी दी जा सकती है। साढे तीन वर्ष का हो जाने पर 'मीट' दिया जा सकता है। गरीब बालकों के लिए मीट की बजाय शाक-भाजी ही अच्छे है। उन्हें फल देना भी लाभदायी है।

बालक छः वर्ष का हो जाए फिर तो वह बड़ो के लिए तैयार किया गया आहार ले सकता हैं। लेकिन तब तक उसके आहार की बनावट में फेर-फार करना ही चाहिए।

छोटे बच्चों के लिए 'ब्रोथ' बनाने की विधि।

मीट का ब्रोथ—ब्रोथ के एक क्यूबिक से॰ मी॰ के लिए एक ग्राम मीट लिया जाए। उसे ठंडे पानी मे रखें। मसाले न डालें। बस थोड़ा-सा नमक काम मे लें। फिर दो घंटों तक मीट को उबालें। उसमें थोड़ा मक्खन डालें। साधनहीन परिवारों मे मक्खन की बजाय ओलिव ऑयल प्रयुक्त किया जा सकता है। मक्खन डालें। साधनहीन परिवारो में मक्खन की बजाय ओलिव ऑयल प्रयुक्त किया जा सकता है। मक्खन के लिए मार्गरीन आदि पदार्थ काम मे न लाएं। ब्रोथ को ताजा-ताजा ही काम में लाना चाहिए। खाने का समय हो तो उससे दो घंटे पहले ब्रोथ बनाने का काम शुरू हो जाना चाहिए। ब्रोथ ठंडा होने लगता है तो उसमें कई रासायनिक पदार्थ घटने लगते हैं। जमा हुआ ब्रोथ खाने से बालक को दस्तें लगने लगती हैं।

सूप (मांड)—सादा और स्वादिष्ट सूप ब्रेड को नमकीन पानी में उबालकर बनाया जा सकता है। अथवा ब्रेड को ब्रोथ में उबालकर तेल का बधार देने से बना सकते हैं। गरीब परिवारों में मटर, बींस आदि दालों को सूप उत्तम होगा। सूखे साग भी काम मे लाए जा सकते हैं। सागों को पानी में उबाल लें, फिर उन्हे निचोडकर स्वादिष्ट सूप बनाया जा सकता है। मक्खन भी उसमें डाल लें। डॉ॰ मॉण्टेसरी छोटे बच्चों के लिए चावल की खीर की बहुत सिफारिश करती हैं। दलिये की खीर भी

पाष्टिक होती ह

दूध व अडे--इनमें नाइट्रोजन अधिक मात्रा में होता है ये बाल-शरीर क लिए अधिक पौष्टिक होने हैं। पर ये ताजे व शुद्ध होने चाहिए। ताजे होने पर ही इनकी जीवन ऊष्मा का लाभ मिल पाता है। ताजा दूध और गर्म-गर्म अंडा शरीर मे जल्दी मिल जाते हैं। दूध और अडे को उबालने से अथवा पकाने से डनमे शरीर में मिल जाने की जो शक्ति होती है, वह चली जाती है और इनके पोपक तत्त्व नष्ट हो जाते है।

बालकों को अच्छा दूध मिले इसके लिए अच्छी डेयरी से संपर्क जरूरी है। कीटविहीन दूध प्राप्त करने के लिए जहा ढोर बांधे जाते है वह स्थान स्वच्छ रखा जाना चाहिए। दूध दुहने से पहले पशुओं के स्तनो को, बर्तनों को तथा हाथों को पहले से ही जतुरहित कर लेना चाहिए। अगर दूध को दूर ले जाना हो तो बर्तन को सीलबंद करना जरूरी है। यह सभव न हो तो ताजा-ताजा दूध काम में लिया जा सकता है। दूध को उबालकर पीने से उनमें विद्यमान रोग के जंतु नष्ट होते हैं, पर उसकी प्राकृतिक पोषक शक्ति भी जल जाती है।

अंडों के बारे में भी यही बात है। मुर्गी ने दिया नही कि गर्मागर्म उठाकर बालक को खिला देना चाहिए। उसे पचाने के लिए बालक को खली हवा में घूमने दिया जाए।

मीट का आहार--सव तरह के मीट बालक के अनुकूल नहीं होते। उन्हें बनाने मे भी बालक की उम्र के अनुसार अंतर रखा जाना चाहिए। उदाहरणार्थ तीन से पांच वर्ष की उम्र के बालकों के लिए कुचला हुआ मीट अच्छा रहता है।

इस उम्र में बालक को यह सिखाना चाहिए कि वह बराबर चबाकर कैसे खाए। साधारणतया बालक आहार को निगल जाते है, जिससे उन्हें या तो अजीर्ण हो जाता है या दस्ते।

बालक को अधिक अनुकूल पडता है 'वाइट मीट' अर्थात् चिकन, वील और सोल, पाइक या कॉड का हल्का मांस। चार वर्ष की उम्र के पश्चात् बीफ का आहार दिया जा सकता है लेकिन भारी या मोटा मीट

यथा पिग, केपन, इल, टनी आदि का न दे। इसी तरह साइस्टर तथा लोबस्टर का मीट भी बालक के भोजन से हटा दें।

उबाला हुआ मीट बालक को हर्गिज न दें क्योंकि उबालने से मीट के पोषक एवं पाचक तत्त्व अधिक परिमाण मे नष्ट हो जाते है।

दूध का आहार—दूध से निर्मित वस्तुओं का विवेचन इस प्रकार है।

प्रत्येक प्रकार की 'चीज' को बालक के आहार हेतु त्याज्य समझा जाए। तीन से छः वर्ष के बालक के अनुकूल दूध का आहार सिर्फ मक्खन है।

कस्टर्ड की सिफारिश की जा सकती है, पर वह ताजा होना चाहिए। उसे या तो जाते दूध में या जाते अडो में बनाया जाना चाहिए। यदि ताजापन बनाये न रखा जा सके तो छोड़ देना चाहिए।

ब्रेड—बालक के लिए ब्रेड एक उत्तम आहार है, पर उसका चयन उम्दा होना चाहिए। क्रम्ब (सूखा टुकडा) पचने में सहज नहीं होता। पर उसे ब्रोथ बनने में प्रयुक्त किया जा सकती है। यदि ब्रेड बालक के हाथ में ही खाने को देनी हो तो क्रस्ट-सूखा हिस्सा ही देना अच्छा रहता है। जो लोग खरीद सकें, उनके लिए ब्रेड स्टिक्स ही अच्छी रहती हैं।

ब्रेड में नाइट्रोजन के तत्त्व अधिक होते हैं। स्टार्च की मात्रा भी अधिक होती है, चर्बी नही। बालक के आहार में तीन वस्तुएं जरूरी हैं—प्रोटेइड्ज अर्थात् जिसमें नाइट्रोजन अधिक मात्रा में हों, ऐसे पदार्थ है, स्टार्च एवं चर्बी। ब्रेड में चर्बी नहीं होती अतः वह अपूर्ण आहार है। अतः ब्रेड के साथ हमेशा मक्खन जरूरी है।

ताजे साग—बालकों को कच्चे साग नही खाने चाहिए। सेलेड आदि त्याज्य सेमें। साग को पकाकर खाना चाहिए। आलू को मक्खन में तलकर बनाई गई पूडी अच्छी रहती है।

फल—बालको के आहार में अनेक प्रकार के फल सम्मिलित किए जा सकते हैं। फल भी दूध और अंडों की भांति ताजे होने चाहिए ताकि उनका जीवन बालकों को मिल सके और उनके शरीर में सम्मिलित हो सके।

शहरो में सामान्यत: ताजे फल नहीं मिलते। ऐसे में जो फल ताजे न हों, उनका उपयोग किस प्रकार किया जाए, यह जानना चाहिए। सब तरह के फल बालकों के लिए उपयोगी नहीं होते। जिन फलों को उपयोग में लिया जा सकता है उनमें परिपक्वता, मुदमुदापन, मिठास और खट्टापन (एसिडि गुण मुख्य हैं। पिचीज, ओप्रिकोट्स, द्राक्ष, करेंट्स, नारंगियां तथा मेंडेरींस आदि ताजे उतरे हुए फल बालको को देने से लाभ होता है। अन्य फल यथा पियर्स, एपल्स, प्लंस को पकाकर अथवा उनका 'स्ट्यू' (सीरप) बनाकर दिया जा सकता हैं

अंजीर, पाइनेपल्स, खारक, तरबूज, चेरीज, अक्रोड, बदाम, हेजेलनट्स तथा चेस्टनट्स आदि को कई कारणों से से बाल-आहार से त्याज्य समझना चाहिए।

फलों में से जो भाग पचने योग्य न हों, उन्हें निकाल देना चाहिए। जैसे छाल अथवा मूल से निगले न जाने योग्य न हों, उन्हें निकाल देना चाहिए। जैसे छाल अथवा मूल से निगले न जाने योग्य बीज या गुठलियां। चार-पांच वर्ष के बालक को भली-भांति समझा देना चाहिए कि फलों की छाल ध्यान रखकर कैसे उतारी जानी चाहिए और उसके बीजों को कैसे फेंक देने चाहिए।

फलों को दो प्रकार से काम में लाया जाता है। या तो भाप मे पकाकर या फिर मुरब्बा बनाकर। मुरब्बे के रूप में उनका इस्तेमाल धनाढ्य लोगों के वश की बात है।

बघार मसाले—बघार में चीनी, चर्बी और नमक पर्याप्त है। इनमें विनिगर तथा लेमनजूस को जोड़ा जा सकता है। लहसुन और रयु (Rue) बालकों के लिए लाभदायी है।। इनसे आंते और फेंफड़े साफ तथा कीटरहित होते हैं।

लौंग, दाल चीनी, लाल मिर्च या काली मिर्च आदि मसाले काम में नहीं लेने चाहिए। राई को तो त्याजय ही समझें।

पेय—बालक को पानी की बहुत जरूरत पड़ती है। उत्तम पेय तो झरने का ताजा जल होता है। धनी-मानी लोग टेबल वाटर्स—यथा,

सानजेमेन्नी, एक्वालोडिया तथा जरा सीरप यथा ब्लेक बेरीज के साथ मिलाकर भले ही दें।

जल से तैयार किए गए पेय बच्चों को न दे। शराब, बियर आदि उनकी स्वादेंद्रियों से अपरिचित रहें तो उत्तम ! कॉफी और चाय भी उनके पास न फटकने दें।

उत्तेजक पेय से बालको को कितना नुकसान उठाना पड़ता है, यह स्पष्ट ही है। फिर भी वर्तमान अज्ञान की स्थिति में बारंबार उस बात पर बल देते ही रहना चाहिए। शराब व एल्कोहल विकासमान बालक के शरीर के लिए विषाक्त होते हैं। इनसे उनका विकास अवरुद्ध हो जाता है उनमें पागलपन आदि के रोग घर कर लेते है। उनमें अन्य मनोरोग भी छा जाते हैं यथा बायु, मैनेन्जाइटिस अजीर्ण, एनिमिया आदि।

कॉफी के बजाय जौ को सेककर उसकी लपसी दी जा सकती है। माल्ट भी चलेगा। विशेष रूप से तो दूध के साथ मिलाकर चॉकलेट देना अच्छा रहता है। बाल-आहार के लिए यह उत्तम है।

बालगृहों को इस संबंध में जन-समुदाय को शिक्षित करना चाहिए। अगर उन्हें इस काम में सफलता मिलती है तो यह नवयुग के लिए उनका एक योगदान माना जाएगा।

इस संबंध में बालगृहों को खाने-पीने का सवाल अपने हाथ में लेना चाहिए।

आहार का समय—बालक के आहार का समय कौन-सा हो, यह प्रश्न भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। यह बात माता-पिता के हृदय में स्थाई रूप मे जम जानी चाहिए और इनका कदापि भंग नहीं होना चाहिए कि बालकों की उत्तम तदुरुस्ती एवं स्वस्थ पाचन क्रिया के लिए उनके भोजन का निश्चित समय होना ही चाहिए। इस समय के अलावा बालकों को खाने को हर्गिज न दिया जाए। लोगों में, विशेष रूप में माताओं में यह भ्रांत धारणा रहती है कि बालक तो दिन भर कुछ न कुछ खाते-पीते रहें तभी उनकी बढ़ोत्तरी संभव है। उनके लिए भला नियमित समय कैसा ? वस्तुतः बालकों के पेट तथा पाचन-क्रिया चलाने वाले स्थान अत्यत

कोमल तथा नाजुक होते है अतएव उनके आहार की नियमितता का पालन करना अधिक आवश्यक है। भोजन के लिए निश्चित किए गए समय के अलावा उन्हे बिल्कुल नहीं खिलाना चाहिए।

बालगृह लंबे समय तक चलते है, अतः वहां बाल-आहार के समय पर नियमन रखा जा सकता है।

सामान्यतः बालगृह में दो बार खाने को दिया जाता है। दोपहर भरपेट भोजन तथा तीसरे पहर चार बजे हल्का नाश्ता। दोपहर को सूप, ब्रेड और मीट। धनाढ्यों के लिए फल, कस्टर्ड, मक्खन, ब्रेड आदि। चार बजे हल्के नाश्ते मे सादा ब्रेड का टुकडा या मक्खन वाली ब्रेड, साथ में फल, यार्मलेड, चॉकलेट, मधु, कस्टर्ड आदि दिये जा सकते हैं। क्रिम्पक्रेकर्स, बिस्किट्स, उबले हुए फल आदि दिये जा सकते हैं। अधिक पौष्टिक तो है दूध मे भिगोये हुए ब्रेड अथवा मेलींसफूड डाला हुआ एक प्याला भरा दूध।

डॉ॰ मॉण्टेसरी मेलींसफूड की बहुत सिफरिश करती हैं। कारण यह है कि यह पचने और पोषण मे वहुत उम्दा है। बच्चो को यह इसलिए पसद आता है क्योंकि यह सुगंधित होता है। छोटों और बड़ों दोनों के लिए यह एक उत्तम आहार है मेलींसफूड जो तथा गेहूं से बनाया जाता है। इसमें सभी वांछित पोषक तत्त्व शुद्ध एव अर्क रूप में विद्यमान रहते हें। प्याले में गर्म पानी के साथ मेलीन्सफूड का आटा सानना तथा उस पर ताजा-ताजा दूध का प्याला भरकर उंडेलना।

पाठशाला के इन दोनों समय के उपरात बच्चे दो बार घर में भोजन करते हैं, सुबह नाश्ता और शाम को व्यालु। व्यातु अत्यंत हल्का होना चाहिए, क्योंकि उसके बाद बालक तत्काल सो जाता है।

इस संबध मे बालगृहों को माताओं को समझाना चाहिए।

धनी-मानी घरो में सुवह के नाश्ते में दूध-चाकलेट अथवा दूध माल्ट का अर्क, साथ में क्रेकर्स अथवा अच्छी तरह टोस्ट की हुई बेड, जिस पर मक्खन या शहद लगाया जाये तो चलेगा। गरीब के लिए तो धारोष्ण दूध का प्याला और ब्रेड पर्याप्त है।

व्यालु मे सूप सर्वोत्तम है। बालकों को सूप दो बार देना चाहिए अथवा एक दूध का प्याला लेना चाहिए। दूध की खीर भी ठीक है। साथ में मक्खन लगी ब्रेड तथा उबले फल चलेंगे।

बालगृह के साथ ही और विशेष रूप से गरीब बालको के बालगृहो के साथ ही शाक-भाजी तथा फलों के लिए छोटा-सा एक बागीचा बनवाया जाना चाहिए। बच्चों को इसका अनेक प्रकार का लाभ मिलेगा। वे अपने आप साग और फल तोड़ेगे तथा उन्हें ताजा साग का ताजा सूप बनाने की अनुकूलता रहेगी। गरीबों के लिए तो ताजे साग का सुख ही सर्वोत्तम है। इसके अला बालगृहों के साथ प्राणियो के संवर्धन की व्यवस्था भी की जानी चाहिए ताकि, ताजा दूध और ताजे अंडे तो उपलब्ध हों। बड़े लडके हाथ को स्वच्छ करके बकरियो को दुह सकेगे। बालगृहों में बालकों को भोजन बनाने, परोसने स्वच्छता आदि अनेक प्रकार के कौशलों का लाभ मिलेगा। आगे चलकर ये तमाम चीजें प्रबोधक साहित्य के बतौर ही काम करेंगी।

बालकों को स्वच्छतापूर्वक भोजन करना सिखाने की खास जरूरत है। रूमाल खराब न हो, टेबिल न बिगड़े, हाथ गंदे न हों—इस तरह स्वच्छता से खाना सिखाएं। अपने हाथों से खाने वाले बालकों को बचपन में चम्मच ही दी जानी चाहिए।

●●

बाल-महिमा

बालक प्रभु की अनमोल देन है।

बालक प्रकृति की सुदर-से-सुदर कृति है।

बालक समष्टि की प्रगति का एक अगला कदम है।

बालक मानव-कुल का विश्राम है।

बालक प्रेम का पैगंबर है।

बालक मानस-शास्त्र का मूल है।

बालक की पूजा है।

बालक को प्यार देकर आप दुनिया को प्यार दे सकेंगे।

बालक को प्रेम देकर आप प्रेम का रहस्य समझ सकेंगे।

प्रभु को पाना हो, तो बालक की पूजा कीजिए।

यदि परमात्मा ने कोई अति निर्दोष वस्तु उत्पन्न की है, तो वह वालक ही है।

वालक के पास रहने का मतलब होता है, निर्दोषता के साथ रहना।

माताओं और पिताओं !

क्या कभी आपने बालक की सुंदर और सलौनी हंसी देखी है ?

क्या आप जानते हैं कि जब बालक को भोजन कराते समय आप स्वयं कैसी-कैसी बाल-लीलाएं करते है ?

क्या वड़ी-से-बड़ी कीमत मिलने पर भी आप कभी ऐसी बाल-लीलाएं करना पसद करेंगे ?

यदि कभी आप अपने इस स्वर्गीय पागलपन का विचार करने बैठेंगे, ता तनिक सोचिए कि अपने बारे में आप स्वय क्या सोचेंगे ?

अपने शोक को कौन भुलाता है ?

आपकी थकान को कौन मिटाता है ?

आपको बांझपन के कलंक से कौन बचाता है ?

आपके घर को किलकारियों से कौन भर देता है ?

मां को ग्रहिणी कौन बनाता है ?

जीवन के संग्राम में पिता को जंगबहादुर कौन वनाता है ?

क्या आप जानते हैं कि कभी किसी माता या पिता ने अपने वालक को बदसूरत कहा है ?

जब बालक, बालक न रहकर आदमी बनता है, तभी वह बदसूरत बन जाता है। बदसूरत आदमी या बदसूरत औरत का मतलब है, विकृत बालक।

जो व्यक्ति बालक के साथ खेल नहीं पाता, क्या वह कभी सहृदयता का दावा कर सकता है ?

बालक को देखते ही आप उसको गोद में न उठा लें, तो आपका यह दंभ, कि आप बाल-प्रेमी हैं, एक क्षण के लिए भी ठिठक नहीं सकेगा।

प्रेम के मामले में कही और दभ चल सकता हैं, पर बालक के पास कभी नहीं चल सकता।

बालक प्रेम का दर्पण है।

राजा हो या रंक, मूर्ख हो या विद्वान्, गरीब हो या अमीर, बालक के सामने कौन नहीं झुका है ?

कौन है कि जो बालक का प्रेम पाने के लिए उसके सामने अपना सिर झुकाता न हो ?

जब बालक बिना दांतों वाला अपना नन्हा-सा मुंह खोलता है, तो ऐसा मालूम होता है, मानो गुलाब का फूल खिल रहा हो।

जब बालक सुबह उठता है, तो उसको यह सारी दुनिया नई-नई सी लगती है।

दुनिया को भी बालक रोज-रोज नया ही दीखता है।

रोज सवेरा होता है, और रोज मां की गोद में एक कमल खिलता

है

जाड़ों की सारी रात मां से चिपककर और मां की गोद में दुबककर सोने और बैठने वाला बालक मां को कितना मीठा लगता होगा ?

बालक मां के प्रेम के कारण जिदा रहता है, या मां बालक की मिठास के कारण जिदा रहती है ?

जब बालक अपने नन्हे-नन्हे पांव हिलाता है, क्या उस समय हम यह सोचते हैं कि इस तरह वह कितनी कसरत कर लेता है, और हवा मे कुल कितना चल लेता है ? या हम उसकी इस क्रिया को देखने में ही तल्लीन हो जाते हैं ?

घुटनों के बल चलने के लिए बालक जो प्रयत्न करता है, और दुनिया की बादशाहत पाने के लिए एक सुलतान जो कोशिश करता है, क्या इन दोनों में हमको कोई फर्क मालूम होता है ?

बालक का प्रयत्न कितना सहज और निर्दोष होता है, और सुलतान के प्रयत्न कितने दोष और भयंकर होते हैं ?

नागों की पूजा का युग बीत चुका है।

प्रेतों की पूजा का युग बीत चुका है।

पत्थरों की पूजा का युग बीत चुका है।

मानवों की पूजा का युग बीत चुका है।

अब तो

बालकों की पूजा का युग आया है।

बालकों की सेवा ही उनकी पूजा है।

नए युग का निर्माण कौन करेगा ?

जन-जीवन के प्रवाह को और अस्खलित बनाए रखेगा ?

आने वाले युग का स्वामी कौन बनेगा ?

भूतकाल की समृद्धि को और वर्तमान की विभूति को भविष्य की गोद में कौन रखेगा ?

बालक के कोश में 'निराशा' शब्द है ही नहीं।

चलना सीखने की कोशिश में लगे बालक को देखिए।

क्या यह कभी थकता है ?

उसका उद्योग और उसकी लगन किसको अनुकरणीय नहीं लगेगी ?

जब बालक चलने की कोशिश करते हुए गिरता है, तो कोई उसे मारता क्यों नहीं है ?

उसे हारते देखकर भी हमें हंसी क्यों आती है ?

क्या किसी तरह का कोई इनाम या लालच देकर हम बालक को हंसा सकते हैं ?

हंसी बालक की बड़ी-से-बड़ी मौज है ?

बालक की हंसी घर और दिल दोनों को उजाले से भरती रहती है।

सोये हुए बालक की हंसी परियों के पखों के प्रकाश की चमक-जैसी होती है।

दो होंठों के खुलते ही बालक की मीठी हंसी पूरे विश्व में छा जाती है।

काली अंधेरी रात में भी बालक की हंसी से मां का सारा भय भाग खड़ा होता है।

कहीं बालक की हंसी में अमृत तो नही भरा है !

लगता है कि मां इस अमृत से ही सदा तृप्त बनी रहती होगी।

जब बालक आधी रात में जागता है तो उसके साथ घर के सब लोग भी आधी रात में जाग उठते हैं।

जब जागकर बालक खेलने लगता है, तो घर के लोग भी उसके साथ खेलने में लीन हो जाते हैं।

बालक के साथ बूढ़े भी हंसने का आनंद लूट लेते हैं।

बड़े बालक छोटे बालकों के साथ हंसकर अपने बचपन की याद को ताजा कर लेते हैं।

नौजवान लोग बालक की हंसी मे नहाकर अपने प्रेम-जीवन की तैयारी करते हैं।

माता-पिता तो बालक की हंसी मे अपने नए जन्म का आनद लूटते रहते हैं।

वालक दवलोक के भूल भटके यात्री हैं

वालक तो गृहस्थों का अनमोल मेहमान हैं।

जब इन मेहमानों की सही सेवा-सुश्रूषा नहीं हो पाती, तो सारा गृहस्थाश्रम ही चौपट हो जाता है।

लक्ष्मी वालक के कुकुम् के-से लाल-लाल पैरो से ही चिपकी रहती है।

बालक के प्रफुल्ल मुख मे प्रेम सतत समाया रहता है।

बालक की मीठी हंसी वाली मधुर नीद में शाति और गंभीरता छिटकी रहती है।

बालक की तोतली बोली मे कविता बहती रहती है।

खेद इसी बात का है कि वह दिव्य कविता मनुष्यों की इस दुनिया में लंबे समय तक टिक नही पाती है।

कभी आपने सुना है कि किसी ने बालक की बातो में व्याकरण की भूलें खोजी है ?

बालक के साथ बात करते समय तो बडे लोग भी खुशी-खुशी व्याकरण के कठोर नियमों को त्याग देते हैं, और अक्सर व्याकरण-विहीन भाषा बोलने के विफल प्रयत्न करते हैं।

जव से वालक व्याकरण-सम्मत बोली बोलने लगता है, तब से उसकी वोली की मिठास घटने लगती है।

जिनको बालक प्यारा न लगता हो, वे तो ईश्वर ने निरे शत्रु ही है।

बालक को 'गंदा' कहकर उसकी ओर न देखने वाले लोग अभागे नहीं हैं, तो और क्या हैं ?

बालक तो इन अभागो की तरफ भी अपने हाथ फैलाता ही है।

हब्शी को तो अपने बच्चे प्यारे लगते ही है, किंतु जो प्रभु-प्रेमी होते है, वे हब्शी के वच्चों से भी प्यार करते हैं।

कई लोग बच्चो से दूर ही दूर रहना चाहते हैं।

भला, हम उनको पामर न कहें, तो और क्या कहें ?

बालक माता-पिता की आत्मा है।

बालक घर का आभूषण है।

बालक आगन की शोभा है।

बालक कुल का दीपक है।

बालक तो हमारे जीवन-सुख की प्रफुल्ल और प्रसन्न खिलती हुई कली है।

यदि आप शिक्षक बनना चाहते हैं, तो आप बालकों का ही अनुसरण कीजिए।

यदि आप मानस-शास्त्री बनना चाहते है, जो आप बालकों का ही अवलोकन कीजिए।

बालक तो पल-पल में जीवन-शास्त्र और मानस-शास्त्र के सिद्धांतों को व्यक्त करता रहता है।

तत्त्वज्ञानी लोग भी बालक मे ब्रह्मांड के दर्शन कर सकते हैं।

जब बालक अपनी नन्ही आंखो से हमारी तरफ देखता है, तो आखिर वह क्या देखता होगा ?

क्या उसकी आंखों का प्रकाश हमारे अदर कोई प्रकाश नहीं फैलाता होगा ?

आप बालक के पास आधा घंटा ही रह लीजिए, और बिल्कुल ताजे-तगडे बन जाइए।

ऐसा लगता है, मानो बालक
आराम और विश्राम का कोई उपवन हो।

●●

अपूर्ण बालक

साधारणतया किसी भी आदश कक्षा या पाठशाला मे, जहां समान धारणा वाले बालक काम करते हैं वहा बालकों के बीच व्यवस्था का अथवा उनका नियत्रण म रखन का सवाल ही खड़ा नहीं हाता। जब वालको के साथ शिक्षकों को पुलिस या न्यायाधीश की तरह पेश आना पडता है, तब यह समझ लेना चाहिए कि शिक्षक का, बालक का या परिस्थिति का कोई-न-कोई दोष अवश्य है। उत्पन्न होने वाली अनिष्ट परिस्थिति को दूर करने के लिए शिक्षक प्रायः तरह-तरह की युक्ति-प्रयुक्तियों से काम लेता है। इससे थोडे समय तक तो काम ठीक ढंग से चलता दिखाई पड़ता है, लेकिन बाद में 'वही रफ्तार बेढगी, जो पहले थी, सो अब भी है' की स्थिति फिर बन जाती है। असल में तो शिक्षक को चाहिए कि वह परिस्थिति को दबाने, छिपाने या दूसरा रूप देने की अपेक्षा उसके कारणों की तह में जाए। जो शिक्षक ऐसा नहीं करता, वह अपने छात्रों को सामाजिक, नैतिक य दूसरे किसी भी प्रकार की ऊंची शिक्षा नही दे सकता। असाधारण याा अपवाद-रूप बालक एक अजब पहेली है। उसकी शिक्षा का प्रश्न अधिसूक्ष्मता से विचार करने योग्य है। शिक्षक को उसका अवलोकन शास्त्रीय-दृष्टि से करना चाहिए। तटस्थ भाव से देखने-समझने के बाद जो कुछ भी करना उचित जान पडे, वह किया जाना चाहिए, यदि वह बालक के लिए हानिकारक न हो। बालक को गिनना या पढ़ना न आने पर जिस तरह शास्त्रीय-दृष्टि वाला शिक्षक उसके कारण का भी पता लगाता है, उसी तरह उसको बालक के दूसरे मानसिक दोषों के कारण का पता लगता है, उसी तरह उसको बालक के दूसरे मानसिक दोषो के कारण का भी पता लगाना चाहिए। शिक्षक को समझना चाहिए कि यदि

बालक अपनी इच्छा से, अपने मन पर, समझ-बूझकर, अकुश न रख सके, तो उसको पढ़ाने का कोई अर्थ नही रह जाता। शिक्षक हमेशा याद रखे कि बालक के बारे मे कहे गए बेहूदा, आलसी, लापरवाह, ठग, निकम्मा आदि शब्दों का प्रभाव बालक पर अच्छे के बदले 'बुरा' ही अधिक पडता है। इसी के साथ, शिक्षक को यह भी याद रखना चाहिए कि 'यह न करो, वह न करो' आदि निषेध-सूचक बाते कहते रहने से भी कोई बात बनती नहीं है। बालकों की कमजोरियो के बारे में शिक्षक को कोई टीका या चर्चा भी नहीं करनी चाहिए। इसलिए नही कि इस तरह उनको डराना अनुचित है, बल्कि इसलिए कि इससे उनको सुधारने का काम और भी कठिन हो जाता है। शिक्षक को उपदेश का या नीति-बोध का काम कम-से-कम करना चाहिए। ऐसा करने से बालकों की नैतिक भावना और सस्कारिता उल्टी मंद हो जाएगी, और वे बिना किसी कारण के ही अस्वस्थ और बेचैन रहने लगेंगे। बालक के वाचन या लेखन को सुधारने का काम शिक्षक जिस शास्त्रीय-पद्धति से करता है, नैतिक सुधार के काम मे भी उसको उसी पद्धति का उपयोग करना चाहिए।

कभी-कभी विद्यालयो मे और घरों मे बालको के कारण जो कठिनाइया खड़ी होती है, उनके आचरण मे हमको जो न चाहने योग्य व्यवहार दिखाई देता है, यदि हम उसके कारण को, परिस्थिति को और उसके सभाव्य उपायों को जान लें तो शिक्षण और बाल-संगोपन के काम में हमारा मार्ग सरल बन जाए।

बालकों से संबंध रखने वाली कठिनाइयों को दूर करने में सहायक बनने वाला एक नक्शा हम नीचे दे रहे हैं। इसके लिए हम श्री चार्लेटन वॉशबर्न के और श्री सपादक 'न्यू इरा' के आभारी है।

इस नक्शे के पांच हिस्से है। पहले हिस्से में बालक के माने जाने वाले दोष दिए गए हैं। दूसरे मे इन दोषो के कारणो की चर्चा है। तीसरे मे उन परिस्थितियों को गिनाया गया है, जिनके कारण ये दोष उत्पन्न होते है, और चौथे मे इन दोषों को दूर करने के उपाय बताए गए हैं। आखिर के पाचवे हिस्से मे यह बताया गया है कि किन-किन कारणों से बालको

का आचरण अधिक खराब होने लगता है।

इस नक्शे से हमको पता चलेगा कि आज इन दोषों को दूर करने के बदले अधिकतर हम ऐसे ही उपायों से काम लेते है, जिनसे दोष बढ़ते है या और गंभीर बनते हैं। नक्शे का अतिम अश इसका साक्षी है—

अपूर्णताओं के प्रकार	**संभावित कारण**	**कारणभूत परिस्थिति**
उपचार	**अशुद्ध उपचार**	
1 जरूरत से ज्यादा	(क) अनुकरण या सूचन	शोरगुल वाली जगह, जोर
शाति, धीमी आवाज,	छडी पछाड़ना या घटी बजाना,	
शोरगुल		की आवाज, जोशीला
सवस्थता (च्वैम्)	तनकर गुस्से से बोलना, उलाहाना	
		वातावरण
देना, ललचाना, सबके सामने		
टीका करना, 'शोर हो रहा है',		
कहना, धमकाना, चुप '		
	(ख) स्नायुओ की थकावट	प्रतिकूल बैठक
अनुकूल बैठक		
		अपर्याप्त काम
पर्याप्त काम		
	(ग) ज्ञान-ततुओं की थकावट	अपर्याप्त आराम, अनुचित
शारीरिक आराम, अच्छा		
		आहार, थकाने वाला काल
आहार, कार्यक्रम में हेरफेर		
	(घ) खराब हवा	हवा की कम आमदरफ्त
अधिक ताजा हवा	एक ही प्रकोर का काम देते रहना	
	(च) उद्दडता या हठीलापन	'अपने बारे में ऊचेपन का
दूसरो की मदद करना	प्रकट मे उलाहना देना	
		विचार
	(छ) ध्यान खींचने की इच्छा	अनुचित महत्त्व देना
दूसरे का ख्याल कराना	दिल दुखाना, पक्षपात करना	
	(ज) घबराहट	डरपोकपन
स्वस्थता	नाराज होना	
	(झ) अस्वस्थता	अव्यवस्थित कमरा या बैठके
सुघडता	प्रकट मे दिखाई पडने वाली	

निरर्थक चीजों का सग्रह
2. समय का दुरुपयोग	(क) विकासक हेतु का अभाव
रास्ता नहीं सूझता	तरह-तरह के काम सुझाना	जबर्दस्ती काम मे लगाना
या आवारापन
(ख) आगे बढने की अनिच्छा	काम से असतोष
अच्छा काम और सहज	टीका करना

प्रोत्साहन
जिम्मेदारी देना	शिक्षक द्वारा जिम्मेदारी लेना
(ग) अपने मे अविश्वास	निराशा
सतोषजनक काम	अधिक, निराशा पैदा करना
(घ) स्वाभिमान का अभाव	प्रकट में निंदा या टीका
व्यक्तिगत प्रोत्साहन	प्रकट रूप मे अधिक टीका करना
(च) आलसीपन	अपर्याप्त पोषण, मानसिक
पर्याप्त पोषक आहार,	आचार, मादक पेय, मिठाइया
मंदता, अपर्याप्त व्यायाम,
भरपूर काम, उचित व्यायाम,	वगैरह का उपयोग बद करके
अपर्याप्त आराम, आहार
आराम, नियमितता	रखना, आलसी कहकर चिढाना
और निद्रा की अनियमितता
(छ) क्रिया-शक्ति का अभाव	काम दूसरो ने कर दिए
स्वय काम करने देना	शिक्षक द्वारा काम कर देना
हों, निर्बल क्रिया-शक्ति
4 मद प्रगति	(क) यह विश्वास कि निराश	प्राप्त निष्फलता
सतोषजनक काम	अधिक निराशा
होना पडेगा
(ख) आत्मविश्वास की कमी	टीका-टिप्पणी
प्रोत्साहन	दूसरो के साथ तुलना
(ग) अपूर्ण तैयारी	ऊचे नबर या चढा दिया
उचित स्थान पर बैठाना	सबक याद करवाना
गया हो
(घ) काम मे मद उत्साह	शिक्षक प्रेरित काम
स्वय प्रेरित काम	शिक्षक की प्रेरणा
(च) क्रिया-शक्ति का अभाव	जिम्मेदारी दूसरो की हो
जिम्मेदारी सौपना, आत्म-	काम करवा लेना
क्रिया-शक्ति की कमजोरी
निर्णय	शिक्षक द्वारा निर्णय कर देना

(छ) महत्त्वाकाक्षा का अभाव काम म या काम करने

अच्छा काम ओर प्रोत्साहन उत्साह भग करना

मे असताप

(ज) मुहर्रमीपन अहंता-प्रधान

दूसरो की परवाह करना उपदेश करना

सिखाना

(झ) असावधानी नीरस काम

विनोद, काम मे परिवर्तन, असावधान कहना

शारीरिक जाच

(ट) अस्वस्थ शरीर अनुचित आहार

उचित आहार आचार, मादक पेय, मिठाइयां

वगैरह का उपयोग, पाठशाला में

रोककर रखना

अपर्याप्त व्यायाम

पर्याप्त व्यायाम नाटक, सिनेमा अधिक देखना

अपर्याप्त आराम

पर्याप्त आराम

अनियमितता

नियमितता

(ठ) विस्मृति नीरस काम

विषय को समझाने में भुलक्कड़ा कहना

विवधता

विचार-साहचर्य की मदता

प्रत्यक्ष अनुभव

(ड) बालिगता ऊची कक्षा मे चढ़ाना

नीची कक्षा में उतारना ऊची कक्षा मे चढाना

अविकसित मानस

5 (क) परिणाम का भय दूसगे का मजाक, दूसरो

संतोशजनक काम , 'लुच्चा' कहना, सबके सामने

की टीका, अनुचित दड

प्रोत्साहन स्वाभाविक दडद्ब बुरा-भला कहना, अधिक नापास

नापास होना

उचित निर्णय करना करना
(ख) अपने में अविश्वास काम स्पष्ट रूप से बताया
प्रश्न पूछने के लिए टीका, व्यंग्योक्ति, चढ़ाना
न गया हो, अधिक ऊंचे
प्रोत्साहित करना, उचित
नंबर पर चढ़ा दिया गया स्थान पर रखना
हो
(ग) जैसे-तैसे काम पूरा करने ऐसे काम को बर्दाश्त
व्यक्तिगत का सौंपना ऐसे काम की तारीफ होनी हो
की आदत किया गया हो
(घ) नकल करने की आदत अनुकरण और नकल
रचनात्मक काम की योजना नकल करवाकर पढ़ाई जारी
करना
रखना
(च) जवाब देने के लिए ही यह धारणा कि घटनाओं
विकास उद्देश्य रखना सिर्फ जवाब देखकर ही नंबर
काम करने की आदत की जानकारी ही शिक्षा है
देना
(छ) स्वाभिमान की कमी काम का हल्का होना
प्रोत्साहन हल्की टीका करना
(ज) बड़ा काम करने का सौंपे गए काम का खूब
कठिन और अधिक ऐसी कठिनाई पैदा कर देना कि
शौक आसान होना
रुचिकर काम सौंपना ठगना असंभव हो जाए
6 दुराग्रह या चिड़चिड़ापन (क) ईर्ष्या अनुचित निर्णय, परिवार
बालक के प्रति ममता निंदा
वालों के मन में बालक के
व्यक्त करना दूसरे की तारीफ
प्रति रुचि या प्रेम न हो,
भाई, बहन या पाठशाला
के साथियों के साथ
पक्षपात किया जाता हो
(ख) बात-बात में उत्तेजित सबके सामने टीका करना,
सहानुभूति, प्रोत्साहन सबके सामने निंदा करना
हो उठना दोष दिखाना
(ग) तिरस्कार-युक्त अनादर टांग अड़ाते रहना,
टांग न अड़ाना, सलाह औ रहनुमाई

अफसरी चलाना

स्वतन्त्रता देना

(घ) दुखीपन कलहपूर्ण घर, बाहरी

चिंता, सावधानी, व्यंग्योक्ति

कठिनाइयां, मैत्री का अभाव

ममता दिखाना कठोरता दिखाना

(च) टेक पर डटे रहना अति बलवान क्रिया-शक्ति

स्वानुभव अफसरी चलाना

(छ) स्वार्थीपन अति निर्बल, क्रिया-शक्ति,

दूसरों का विचार करना खुशामद करना

अपनी ही संभाल रखना

सिखाया गया हो

(ज) एकाग्रता मनचाहा करने की आदत,

एकाएक दखल न देना, किट्-किट् करते रहना

सुदृढ क्रिया-शक्ति

विनय

(झ) शकाशीलता अनुचित टीकाए

तटस्थ व्यवहार अविचारी निर्णय, निंदा

7 बात-बात पर बुरा (क) यह समझने की आदत टीकाए, अनुचित शका

प्रोत्साहन, उचित व्यवहार अविचारी निर्णय

लगना कि टीका की जाती है

(ख) यह मान लेने की आदत अहता

दूसरों का ख्या रखना गंभीर बन जाना

कि तिरस्कार किया

निष्कपट बातचीत

जाता है।

(ग) मुहर्रमीपन अति प्रामाणिकता

विनोद को समझा, सिखाना

(घ) ज्ञान-ततुओं की निर्बलताअनुचित आहार,

उचित आहार, नियमितता, नसीहत, सजा

(Nervousness) अनियमितता अपर्याप्त,

भरपूर नींद

नींद ज्ञान-तंतुओं की,

परपरागत दुर्बलता

8. मूर्खता (क) आत्म-भान शारीरिक हेरफेर

माता-पिता को ध्यान रखना जोर लगाकर करने का काम

चाहिए या मेहनत का क्रम
(ख) परस्पर विरोधी हित अतिश्रम
काम से मुक्ति,

नबर 2 देखिए
(ग) जिम्मेदारी का अभाव
नबर 2 देखिए
(घ) महत्त्वाकाक्षा का अभाव
नबर 2 देखिए
(च) क्रिया-शक्ति का अभाव
नंबर 2 देखिए
(छ) बालिगता अपरिपक्वता
नीचे के दर्जे मे उतारना ऊपर के दर्जे मे चढाना
9 सयोपन का अतिरेक (क) मिथ्याभिमान झूठी प्रतिष्ठा मिली हो
दूसरो की परवाह न क्रोध, दिल, दुखाना
वाचालता, चपलता
करना सिखाया गया हो,
प्रतिष्ठ छीन लेना
(ख) व्यवहार का अज्ञान जगली वातावरण मे
साश्चर्य मौन अतिशय अविवेक
पला-पुसा हो
नम्रता विवेकपूर्ण, अवगणना
(ग) बड़ा गिने जाने की औद्धत्य की प्रशंसा की
बड़प्पन से नीचे उतार देना सबके देखते टीका करना
अकाक्षा गई हो
(घ) ध्यान खीचने की आदत घर पर उचित सार-सभाल
रुचिकर काम देना, दूसरो का सताना
न रखी गई हो।
ध्यान रखने की बात सिखाना
(छ) ईर्ष्या घर में परवाह न की गई
मित्रता, दूसरो का ध्यान दूसरो की प्रशसा
हो, स्वार्थवृत्ति
रखना
(ज) संतुलन का अभाव मिथ्या आदेश

●●

बालकों के गंदे खेल

मैं जहां-जहां भी जाता हू, वहां-वहा माता-पिता द्वारा मुझसे यह सवाल अक्सर पूछा जाता है, 'कभी-कभी हमारा बालक गंदे खेल खेलता है, और जब हम उसको टोकते हैं या मारते-पीटते हैं, तो वह उनको लुक-छिपकर खेलने लगता है, और सारी बात हमसे छिपाकर झूठ बोलता है। हम इन गंदे खेलों से अपने बालकों को कैसे बचाएं, और इसका क्या उपाय करें ?'

हर एक माता-पिता के सामने यह सवाल किसी-न-किसी समय खडा होता ही है। शायद सब बालकों के जीवन मे एक समय ऐसा आ ही जाता है कि जब वे इस तरह के गंदे खेलों में उलझ जाते हैं, या उन खेलों के नजदीक से गुजर जाते हैं। सब माता-पिताओं को चाहिए कि वे इस मामले में थोड़ी भी लापरवाही न बरतें। यही नहीं, बल्कि कुद खास-खास मामलों में वे पूरी-पक्की खबरदारी जरूर ही रखें।

अपने बचपन में मैं अपनी ननिहाल में एक लड़की की सोहबत में रहा था। इस समय मुझको याद नहीं पड़ता कि हम कोई खास गंदा काम करते थे, लेकिन मेरे मन पर यह छाप रह गई है कि वह लड़की कोई गदा काम कराना चाहती थी। लेकिन हम उस बारे में कुछ जानते-समझते नहीं थे। शायद इसलिए हम गदे खेलों के फंदे में फंसने से बच गए होंगे।

अपने अनुभव और अवलोकन के आधार पर मैं यह कहना चाहता हूं कि बालकों में यह बुराई सहज है, ऐसा कहने की अपेक्षा यह कहना अधिक उचित और सच है कि यह वातावरण की उपज है। अधिकतर सोहबत की वजह से ही वह बुराई बालकों में आती है और सोहबत के

कारण ही बालक इसको एक-दूसरे तक पहुचाते है।

लेकिन मेरा अनुभव यह भी है बालकों को यह चीज वड़ो की तरफ से मिलती है। कई नौजवान छोटे बालको के साथ अपनी दोस्ती बढ़ा लेते हैं, वे उनको पाई-पैसा, मोती अथवा खेलने और खाने की चीजें देते हे, और बालकों को एकात में ले जाकर उनके हाथो का उपयोग गदे काम मे करवाते हैं। बड़ी उम्र के लोग वच्चों को दूसरे ढंग से बिगाड़ते हैं, और मौका मिलने पर उनको उस बुराई की लत लगा देते हैं।

छोटे बालक या बड़े बालक ऐसे नौजवानों की सोहबत मे पडकर गदे खेल सीख लेते हैं। इन खेलों में उनको कुछ मजा आने लगता है, इसलिए बाद में वे इन खेलों को आपस मे खेलना शुरू कर देते हैं। बडे लड़के जिन गुप्त परिस्थितियों में इन खेलों को सिखाते है, वैसी ही परिस्थिति मे छोटे बालक भी इसको खेलते है, और सब कुछ छिपाना चाहते है।

इसके अलावा, बड़ी उम्र की लड़किया भी छोटे बालकों को इन गदे खेलों की ओर खीच सकती हैं। अपने आवेग को शात करने के लिए वे छोटे बालकों के साथ इस तरह खेलती हैं, और उनके अदर ऐसी गर्मी पैदा कर देती हैं, कि जो बालकों को अच्छी लगती है। छोटे बालकों के प्रति ममता दिखाकर भी लडकियां उनके साथ इस तरह के खेल खेलती है। इन सबका परिणाम यह होता है कि छोटे-छोटे लड़के-लड़की भी ऐसे गदे खेल खेलना सीख जाते हैं, तो हम उनको मारते-पीटते हैं या डाटते-डपटते हैं इसलिए बाद में वे उनको अधिक गुप्तता के साथ खेलने लगते है।

अक्सर हमारे घरों में मेहमान वगैरह भी आते रहते है। ये लोग भी हमेशा गंदी आदतों से मुक्त नहीं होते। इनके साथ हम अपने बालकों को सुरक्षित मानते हैं। लेकिन जब हमारे बालक इनके साथ सोते हैं, तो वे अनजाने ही इनसे कुछ गदी बातें सीख जाते हैं। ऐसे मेहमानों में पुरुष और स्त्री दोनों का समावेश होता है। छात्रावास जैसी जगहो में रहने वाले विद्यार्थियों में तो ऐसे कामों की गुरुदीक्षा देने वाले लोग तैयार ही होते है। जब ऐसे गुरुओं या शिष्यों के साथ हमारे बालकों का परिचय होता

है, तो उनको इस परिचय का लाभ मिले बिना रहता ही नहीं।

हम समझ सकते हैं कि यह बुराई कहां से आती है। इसमे संदेह नहीं कि इस बुराई को जगाने मे और इसका प्रचार करने में सोहबत, जान-पहचान और संग-साथ का बडा असर होता है।

इस बुराई के प्रति बालकों का झुकाव उनको विरासत में भी मिलता रहता है। हम बड़ी उम्र के लोग जिस हद तक अपनी बड़ी उम्र में या बचपन में इस बुराई के शिकार बने होंगे, उस हद तक इसका फल हमारे बालकों को भी भोगना ही होगा। हमारे बालको को हमारी शक्ति और अशक्ति अच्छाई और बुराई दोनो ही विरासत में मिलती हैं। बालक दूसरी बार हमारे बचपन को जीते हैं, और ऐसा करते हुए वे हमको हमारे असल स्वरूप की याद दिलाते हैं गृहस्थ के रूप में हमारा अपना जीवन भी इस बुराई को जगाने में इसके लिए अनुकूल वातावरण बनाने में मदद करता रहता है। अगर स्त्री-पुरुष के नाते हम ऐसे ढंग से रहें कि जो ढंग बालकों की आंखों के सामने आना नहीं चाहिए और जो बालकों के कानों से टकराना नहीं चाहिए, तो उस ढंग का असर बालकों पर पड़ेगा, और बालकों को उसकी हानि भुगतनी ही होगी।

बचपन में बालक अपने वातावरग के प्रति बहुत जागृत होते हैं। उन पर वातावरण का बहुत गहरा और पक्का अक्सर पड़ता है। पडोस के घर का, अपने घर का, और घर के सब लोगों का अच्छा-बुरा वातावरण मौसम की तरह बालकों को छूता रहता है, और उनको हानि-लाभ का हिस्सेदार बनना ही होता है। जब बालक गहरी नींद में सो रहा होता है, उस समय भी उसके आसपास का वातावरण उसको प्रभावित करता ही रहता है। यह प्रभाव केवल शरीर पर ही नहीं, बल्कि मन पर और मन के मूल में रहने वाली अन्य शक्तियों और वृत्तियों पर भी पड़ता रहता है।

इस तरह बालको की बुराइयों के कारणों में माता-पिता का आचरण भी एक कारण होता है माता-पिता के रूप में हम यह जानते भी हैं कि अपने बालकों की हाजिरी मे हम कितने संयमी या असंयमी होते है। इसलिए हम खुद यह नही कह सकते कि बालकों की बुराइयों की

जिम्मेदारी मे हमारा अपना कोई हिस्सा नहीं है।

यहां यह बात भी जानने लायक है कि जब घर के बड़ों और बूढ़ों तक को कोई काम नही मिलता, तो वे बुरे रास्ते पर चलने लगते है। हर एक आदमी कुछ-न-कुछ करना चाहता है। मनुष्य मे कुछ-न-कुछ सृजन करते रहने की एक सहज वृत्ति होती है। जब इस वृत्ति का पोषण नही होता, इसको अवसर नही मिलता, यानी जब आदमी के हाथों से काम-काज छुड़वा लिया जाता है, तव खाली बैठा-बैठा वह बर्बादी का रास्ता पकड़ लेता है। मतलब यह कि वह किसी बुरे काम के फंदे में फस जाता है। विकृति या बुरी प्रवृत्ति अच्छी प्रवृत्ति को रोकने से पैदा होने वाला विष है। बहते पानी को रोकने से वह बदबू देने लगता है, और रोग का निमित्त बनता है। इसी तरह प्रवृत्ति को रोकने से पैदा होने वाला विष है। बहते पानी को रोकने से वह बदबू देने लगता है, और रोग का निमित्त बनता है। इसी तरह प्रवृत्ति को रोकने से उसमे विकृति उत्पन्न होती है, और उसके फलस्वरूप बुराइया पैदा होती रहती हैं।

इसी तरह जब बालकों को घर में कहीं कुछ करने को नहीं मिलता, जब घर में उनको ऐसा कोई काम नहीं मिलता, जिसमें उनको अपने हाथों, पैरों, आंखों और मन, बुद्धि आदि का उपयोग करना पड़े, जब उनको सिर्फ अपना सबक ही तैयार करना होता है, तब काम-काज करते रहने की उनकी सहज रुचि का पवित्र झरना बहते-बहते रुक जाता है, और उसमे से गंदगी और सड़ाध पैदा होती है। सोहबत के असर से पैदा हुई बुराई भी तभी जोर पकड़ती है, जब बालकों को उनकी अपनी रुचि का कोई काम नहीं मिलता। यह बुराई तभी बढ़ती है, जब मा-बाप इसको मिटाने के लिए बालकों के हाथों से सारे काम छीन लेते हैं, और उनको सबक तैयार करने के लिए किसी एक कोने में बैठा देते हैं। जो बुराई घर के बडे लोगों में प्रकट होकर बड़ों से बालकों को मिलती है, बड़ों में उस बुराई के प्रकट होने का कारण भी यही है—काम का अभाव, झूठी फुर्सत, काम-काज पर पाबंदी, और काम-काज का विरोध !

हम जानते हैं कि अपने घरों में हम बालकों को कोई काम देते नहीं

है क्योंकि हम खुद ही समझ नही पाते कि बालको को हम क्या काम दें। बालक कई तरह के काम करना चाहते हैं, लेकिन अलग-अलग कारणो से हम उनको काम करने से रोक देते हैं। हम मानते हैं कि अमुक काम बालक नहीं कर सकते, क्योंकि वे उसको करना जानते नहीं हैं, क्योंकि काम करते-करते उनके शरीर को कोई चोट पहुंच सकती है,
क्योंकि काम करते-करते उनके शरीर को कोई चोट पहुंच सकती है,
क्योंकि अगर बालक काम करते हैं, तो चीजें बिगड़ती हैं, बर्तन बिगडते हैं, कपड़े वगैरह चीजें बिगडती हैं, क्योंकि काम करना बालकों के लिए जरूरी नहीं है, क्योंकि काम करने के बदले अगर वे अपना सबक तैयार करते हैं, तो वह उनका एक काम ही होता है। इस तरह जब हम बालकों के हाथों से एक के बाद एक सब काम छीन लेते हैं, तब बालकों में विकृति उत्पन्न होती है। आगे चलकर यह विकृति अनेक रूप धारण कर लेती है। सब प्रकार की बुराइयों में रुचि लेना, गंदे काम करना, गंदे खेल खेलना, गंदी बातें बोलना आदि ये सब विकृतियों के ही रूप हैं।

बालकों के गंदे खेलो की जड़ में ये सारी बाते हैं। घरों में उनको बढावा मिलता रहता है। वहां इनका पोषक वातावरण भी होता है।

ऐसी स्थिति में हम घर के बड़े-बूढ़े लोग इस मामले में क्या करें
सबसे पहला काम हम यह करें कि बालकों के हाथों में कुछ-न-कुछ काम सौंप दें। बालको का लिखना-पढ़ना भी एक काम ही है, लेकिन इस काम से बालकों की सृजनात्मक वृत्ति को अपने विकास का पूरा अवसर नहीं मिलता। उसके द्वारा बहुत ही कम आराम और काम मिलता है। सृजनात्मक काम से मतलब है, ऐसा काम, जिसके जरिए बालक अपने हाथ-पैर का उपयोग करके कोई चीज पैदा कर सके। जैसे मिट्टी के खिलौने बनाना, लकड़ी की चीजें बनाना, हथौडी, कील और लकड़ी की मदद से जो भी चीज सूझे, सो बनाना, गड्ढे खोदना, बाग बनाना, पेड़ों को पानी पिलाना, झाडना-बुहारना, बर्तन मांजना, कपड़े धोना, घर के समान को सजा कर रखना, छुरी और कैंची की मदद से कई तरह की उपयोगी चीजें बनाना, आदि-आदि। ये सब काम बालक में विद्यमान सृजनात्मक

वृत्ति को गति देंगे, उसमें जान डालेंगे और बालक को संतुष्ट करेंगे. इससे बालक का गलत रास्ते जाना सहज ही बंद हो जाएगा। गंदे खेल खेलकर शरीर और मन को गंदा बनाने की अपेक्षा अगर इन खेलों में हाथ-पैर गंदे होते हैं, या कपड़े गंदे होते हैं, तो उससे कोई नुकसान नहीं होता। इसके विपरीत, ये सारे खेल बालक के शरीर को अधिक उजला और मन को स्वच्छ और निरोगी बनाएंगे। गंदे खेल मन की एक बीमारी है। मन की इस बीमारी की एक ही दवा है, काम—ऐसा काम जो बालक के लिए रुचिकर और उपयोगी हो।

ऊपर सुझाए गए कामों के अलावा नाटक खेलना, नाचना, खेलना-कूदना, सजाना, चीजों को ढंग से रखना, जमाना, मंडप बनाना आदि काम भी बालकों की रुचि के काम होते हैं। ये सारे काम, ऊपर गिनाए गए सब काम, और हर वह काम, जिसमें मूल रूप से हाथों और पैरों का उपयोग होता है, जिसमें ज्ञानेंद्रियों और कर्मेंद्रियों के सहयोग से कोई चीज बनती है, बालकों को नीचे गिरने से रोक लेता है, और उनके चरित्र की रचना करता है।

बहुत-कुछ जान लेना चारित्र नहीं है। तोते की तरह यह बताना कि सच क्या है और झूठ क्या है, चारित्र्य नहीं है। सत् और असत् को समझना भी चारित्र्य नहीं है। चारित्र्य का अर्थ है, सच्चे काम करना और झूठे कामों से मुंह मोड़ना। और ऐसा आचरण तो वही कर सकता है, जिसके हाथ-पैर आदि कर्मेंद्रियों और आंख-कान आदि ज्ञानेंद्रियां स्वस्थ हैं, बलवान है, तेजस्वी हैं, और काबू में हैं। हमेशा काम करते रहने से, हलचल करते रहने से काबू हासिल होता है। कुर्सी पर बैठकर पढ़ते रहने से या सोचते रहने से काबू हासिल नहीं होता। काम ही चारित्र्य की नींव है।

समझदार माता-पिताओं को चाहिए कि वे अपने बालकों को काम देते रहने की व्यवस्था करते रहें। बालकों को पढ़ाने के लिए शिक्षक रखना अपने आप में कोई काम नहीं है, उल्टे, यह तो काम का विरोध है। जितने समय तक शिक्षक बालक को जबर्दस्ती बिठाकर उसको पढ़ाता है, उतने

समय मे बालक अदर ही अदर सड़ता रहता आर गदा बनने का तयारी मे लगा रहता है। इसके विपरीत, जब बालक खुशी-खुशी खेलता हे, कूदता है, नाचता है, गाता है, खोदता है, चीनता-चूनता है, ओर तोडता-फोडता है, उस समय वह सच्चा बन रहा होता है, महान् बन रहा होता है, और मनुष्यत्व को प्राप्त करने में लगा होता है।

अभावों वाले वातावरण में, शून्य की स्थिति मे, कोई काम हो नही सकता। हमारा कर्त्तव्य है कि हम घर के वातावरण को काम-काज से भरा-पूरा बनाए और उसका पोषण करते रहें। इसलिए ऊपर जिन सृजनात्मक कामों की चर्चा की कई है, उन कामो के लिए आवश्यक साधन हमको अपने घरों मे जुटाने चाहिए। घर में बालको को एक जगह देकर वहां उनको रुचि के काम करने की पूरी स्वतंत्रता देनी चाहिए। बालकों के इन कामों से हम किसी कमाई की आशा न रखें। उनके कामो मे संपूर्णता और सुदरता न आ पाए, तो हम उनसे परेशान न हों। हम अपने बालकों से घर के बर्तन नहीं मंजवाना चाहते हैं। इसके लिए तो हमारे या नौकर के हाथ ही काफी हैं। बालकों को हम इस विचार से काम करने के अवसर नही देते कि वे घर को झाड़-बुहार कर साफ रखे, और हमारी मेहनत बचा लिया करें। बल्कि हम तो बालको को उनका जीवन बनाने के लिए, उनके विकास के लिए, उनकी शक्ति बढाने के लिए उनको काम का वातावरण देते हैं। यहां बालकों का विकास ही लाभ रूप है घर की सफाई हो जाना या बर्तनों का मंज जाना लाभ नही है। चारित्र्य-निर्माण की दृष्टि से इन कामों की कीमत बहुत ही कम है। यदि काम से चारित्र्य बनता है, तो काम अपने आप मे एक मूल्यवान वस्तु बन जाता है, और वही परम लाभ है।

दूसरी बात सोहबत की है। इस मामले मे माता-पिता के नाते हमको हमेशा चौकन्ना रहना चाहिए। जो बात छूत वाले रोगों की है, वही सोहबत की भी है। भले ही छूत वाले रोग बाहर से आकर लगते हों, पर वे नुकसान तो कर ही जाते हैं। इसी तरह सोहबत भी बाहर की होती है, पर वह अपना बुरा असर छोड जाती है।

माता-पिता अपने घरो में व्यवस्था ऐसी रखें कि जब घर में बालक इकट्ठा होकर खेलें, तो वे किसी एकांत जगह में, पर्दे की आड़ में, जीने के नीचे या आलमारी के पीछे न खेलें। कोई सुन न सके, ऐसी फुसफसाहट आपस में न करें, वे बार-बार यह देखते-समझते रहें कि बालक किस तरह के खेल खेल रहे हैं। यह भी देखते रहें कि पास-पडोस के कौन-कौन बालक आते है। बहुत बड़े बालकों को बिल्कुल छोटे बालकों से घुलने-मिलने न दे। बराबरी के बालकों में भी जो बालक एकांत में जाकर बात करने या छिपकर खेलने को कहें, उन्हें विदा कर दिया जाए। शुरू में वे एकांत खोजेंगे, बाद में गुपचुप खेलेंगे, और अत मे गंदे खेल खेलने लगेगे। इन सबका पहला कदम एकांत की खोज है। विगड़े हुए बालक एकात का अर्थ समझते है। वे शुरू से इस बात की खबरदारी रखते है कि कोई उनको देख-परख न ले। हम यह मानकर न चलें कि अमुक-अमुक तो हमारे नाते-रिश्ते वाले हैं। उनको अविश्वास की नजर से देखकर हम उनमें घबराहट भी पैदा न करें। फिर भी उनके रंग-ढंग से उनको पहचान कर हम उनको अपने बालको से दूर कर दे। ऐसा करने मे झूठी शर्म या संकोच न रखें। ऐसे बालकों को हम विदा कर दे। अपने बालको से हम कह दें कि उनके साथ न खेलें। हम गंदे बालको के माता-पिताओ को भी सावधान कर दें। अगर मना करने पर भी हमारे बालक गंदी आदतों वाले बालकों के साथ खेलने को दौड़े, या उनके साथ खेलने का आग्रह करें, तो उनको वैसा करने से रोकने में हम हिचकिचाए नहीं। ऐसे मामलों में हम अपने बालकों को पहले से ही कह दें कि गंदी आदतों वाले बालको के साथ खेलना उचित नहीं। यदि बालकों का हमारी बात न जंचे, तो हम उनको रोकें। दूसरी तरफ, हम अपने बालकों के सामने तरह-तरह के सुंदर कामो के साधन रख दे। हम बालकों को रोककर ही रह जाएंगे, तो बालक लुच्चेपन से काम लेकर निकल भागेगे, और हमको ठगकर अपना मनचाहा काम करेंगे। यही नहीं, बल्कि वे दुगुने जोर से बुराई के फंदे में फंसेंगे, और दूसरों को फंसाएंगे।

आज की परिस्थिति में उचित यही है कि हम अपने बालको को

गलियों में खेलने के लिए न जाने दे। गलियां तो आज गदगी का घर बन चुकी हैं। बहुतेरे बालक वहीं से गदगी के या बुराई के कीटाणुओ को बटोरते है। बालकों को अपने घरो मे बंद करके भी न रखें। बालक घर छोड़कर गली मे इसलिए जाते हैं कि वहां उनको दौड़ने, कूदने और अपनी बराबरी के लड़को के साथ घुलने-मिलने के मौके मिलते हैं। अपनी एक उम्र में बालको को दोस्तों की जरूरत होती है। अगर हम उनको अपने दोस्तो के बीच जाने से रोकते हैं; तो वे हमारी आंख चुराकर निकल भागते हैं, और दोस्तो की दोस्ती के साथ वे उनसे कुछ बुराइयां भी पा जाते हैं।

माता-पिता ऐसी व्यवस्था करे कि बालकों के मित्र उनसे मिलने घर पर आएं। अपने बालकों के मित्रों को तो हमें अपनाना ही होगा। बालको को स्वस्थ वातावरण देने के लिए उनके कुद चुने हुए मित्रों को अपने घर मे स्थान देना होगा। हम अपने मित्रों के लिए अपना बहुत-सा समय और काफी पैसा खर्च करते ही हैं। ऐसी स्थिति मे अपने बालकों के मित्रों के लिए हम आधा पैसा भी खर्च करेगे, तो उससे उनको स्वस्थता और आनद दोनों मिलेंगे।

खासतौर पर यह बात ध्यान में रखने लायक है कि गंदे बदन और गदे कपड़ों वाले बालक गंदी आदतों की तरफ मुड़ते है। इनके जरिए से उनके अंदर की गंदी वृत्ति को पोषण मिलता है। इसलिए बालकों के शरीरों को शरीर के सारे अगों को साफ और स्वच्छ रखना चाहिए। कपडे भी साफ-सुथरे और ढीले-ढाले ही पहनाने चाहिए। तंग कपड़ो से उनको बचाना चाहिए। बालकों को खुजली चले या शरीर के अंगो को मलने-मसलने की इच्छा होने लगे, ऐसी स्थिति से उनको बचा लेना चाहिए। ये सब निषेध है। बालकों से 'सीधे-सीधे इनकी चर्चा किए बिना ही आवश्यक सारी व्यवस्था हमें करनी है।

एक काम हमें नहीं करना है और वह यह है कि बालकों को गदे खेल खेलने के लिए हमको न तो उन्हें मारना-पीटना है, और न डाटना-डपटना ही है। मारने-पीटने की जो वृत्ति हमे बनी रहती है, वह इस बात की सूचक है कि हमारी सृजनात्मक वृत्ति क्षीण हो रही है।

मारना-पीटना अपने आपमें एक विकृति है, एक बुराई है। इसलिए मारने-पीटने से विकृति मिटती नहीं; बल्कि उसको बढ़ावा मिलता है। मार खाने वाला बालक इसी कारण दूसरों को मारना-पीटना सीख जाता है। मार-पीट के रसायन में से बुराई अपने आप पैदा हो जाती है। इसलिए मारना-पीटना सर्वथा त्याज्य ही है।

डराने-धमकाने से बालक लुच्चा बन जाता है, चोर बन जाता है। डर हमेशा आदमी को चोर और धूर्त बनाता है। डर के कारण ही बुद्धि का गलत उपयोग होने लगता है। डर मनुष्य की शुद्ध वृत्ति को मलिन बना देता है। इसलिए जब बालक कोई गंदा काम करे, तो हम उनको डांटे-डपटें नहीं। जिस तरह बालक को बुखार आने पर हम उसको दवा ही देते हैं, उसी तरह अगर बालक किसी बुराई में फंस गया है, तो बुराई को बीमारी समझकर उसका इलाज करना ही जरूरी है। मारना-पीटना या डराना-धमकाना बीमारी का इलाज नहीं है। वह बीमारी को ढकने का एक ढक्कन-भर है। जिस तरह ऊपर से दबाई गई बीमारी आखिर बीमारी ही बनी रहती है, और मनुष्य के लिए घातक सिद्ध होती है। उसी तरह जड को मिटाए बिना ऊपर से दबाई गई बुराई ज्यों की त्यों बनी रहती है, और अंत में जब वह फूटकर बाहर निकलती है, तो बालक को हैरान और परेशान कर देती है। बालक की बुरी वृत्तियां हमे दबानी नहीं हैं, उनको दूर ही करना है। दाबी गई वृत्ति तो अंदर की अंदर ही बनी रहती है। दूर की गई वृत्ति ही दूर जाती है।

डराने-धमकाने की तरह ही बालक को शर्मिंदगी नहीं बनाना चाहिए। शर्मिंदगी बालक को अपमानजनक लगती है। वह सोचता है कि ऐसा करके शर्म महसूस करने के बदले अच्छा यह है कि काम ऐसी खबरदारी के साथ किया जाए कि मां-बाप को उसका पता ही न चल पाए। बालक सोचता है, 'अब मै यह काम नही करूंगा।' लेकिन वह फिर उसको करने लगता है, क्योंकि उसके हाथ में करने लायक दूसरा कोई काम रहता ही नहीं।

हम बालकों को यह उपदेश भी न दें कि अमुक काम करना अच्छा है, और अमुक काम बुरा है। भलाई और बुराई को जानते-समझते हुए भी

आदमी भले बुरे काम करता ही रहता है क्योंकि क्रिया शक्ति निर्बल होती है। उपदेश से बात तो समझ मे आ जाती है, उस पर अमल करने की शक्ति नहीं आती। उपदेश के कारण, उत्पन्न समझदारी से मन में भावना जागती है, अच्छा संकल्प लेने की वृत्ति बनती है, किंतु इससे उस पर अमल करने की शक्ति प्रकट नही होती, क्योंकि सकल्प को कार्य में परिणत करने लिए क्रिया-शक्ति के बल की आवश्यकता होती है। अतएव उपदेश देने के बदले हम बालक को काम करने के साधन दें, अच्छी सोहबत दे और अच्छा वातावरण दे। जब तक हाथों मे काम है, और जब तक वातावरण स्वच्छ और निर्मल है, तब तक बालक बुराइयों से सुरक्षित हैं।

●●

अपने बालकों की भलाई के लिए

अपने बालकों की भलाई के लिए हम क्या करेंगे ?

यह एक और नया सवाल ! भला, अपने बालकों के लिए हम क्या नहीं करते हैं कि हमसे ऐसा सवाल पूछा जाता है ?

हम अपने बालक को खिलाते-पिलाते हैं। हम उसको खेलाते हैं और भोजन कराते हैं। हम उसको पहनाते-ओढ़ाते हैं। पाठशाला मे भेजकर हम उसको पढ़ाते-लिखाते हैं। उसके लिए हम पैसा इकट्ठा करते हैं। इतना सब करने के बाद भी हमसे ऐसा सवाल क्यों पूछा जा रहा है ?

आइए, इस सवाल के बारे में हम थोड़ी गंभीरता के साथ विचार करे।

अपने बालक के लिए हम इतना काम तो करें ही करे।

बालक को हम बेढ़ंगे कपड़े न पहनाएं। हम उसको गहनों से न सजाएं। हम उसको साफ-सुथरा तो रखें ही रखें।

अपने बालक को बुरी पुस्तकों और बुरी सोहबत से हम बचा लें। हम उसको प्राणघातक पाठशाला से जरूर ही हटा लें।

किसी भी हालत मे, अपने बालक को, कभी किसी भी तरह की, कोई सजा हम न दे।

क्या अपने बालकों की भलाई के लिए हम इतना काम भी नहीं करेंगे ?

क्लब में जाना छोडकर क्या हम उनको बागीचे में घुमाने नहीं ले जाएंगे ?

अपने मित्रों से मिलना-जुलना छोड़कर क्या हम अपने बालकों को अजायबघर और बाजार दिखाने नहीं ले जाएंगे ?

कुछ देर के लिए अखवार पढना छोड़कर क्या हम अपने बालकों की

प्यार-दुलार भरी बाते नहीं सुनेंगे ?

कुछ देर के लिए अपने धंधे की बातें भुलाकर और अपनी पढ़ाई को एक तरफ रखकर क्या हम अपने बालकों को मीठी-मीठी बाते कहकर सुलाना पसद नही करेंगे ?

कुछ देर के लिए अपने मन की थोथी तरंगो को और अपनी आराम-पसंदी को छुट्टी देकर क्या हम अपने बालकों को छोटे-छोटे गीत नही सुनाएंगे ?

यदि सचमुच हम अपने बालकों को चाहते हैं, जो हम नीचे लिखे काम हर्गिज न करें।

हम उनको टोकें नहीं। हम उनका अपमान न करें। भोजन के समय तो हम उन पर कभी नाराज हो ही नही। किसी भी हालत में सोते समय तो हम अपने बालक को कभी रुलाएं ही नहीं। किसी भी हालत में सोते समय तो हम अपने बालक को कभी रुलाएं ही नहीं।

भोजन के समय हम बालक के आनंद का ही विचार करे। सोते समय हम बालक के सुखमय सपनो की ही बातें सोचें। घर में जो भी बना हो, और बालक को जो भी रुचता हो, सो उसको तब तक खने दीजिए, जब तक वह खाना चाहे ! जब तक बालक अपनी मौज के साथ खेलना चाहे उसको खेलने दीजिए।

बालक को यह कहते रहने से क्या फायदा कि वह यह चीज खाए और वह चीज खाए ?

रात को अपने बालक को चपत मारकर सुला देने से हम कौन बड़ी कमाई कर लेते हैं ?

अपने विलास के लिए आपका पाप-पूर्ण जागरण मूल्यवान हैं, अथवा अपने बालक के निर्दोष आनंद के लिए किया गया अपका पवित्र जागरण मूल्यवान है ?

नींद लाने वाली गोली खिलाकर आप अपने बालक को क्यों सुलाते है ? क्या इसलिऐ कि वह आपके आनंद में बाधक बनता है ?

यदि आपको आराम और विलास का ही सुख लूटना था, तो आपसे किसने कहा था कि आप बालक को अपने बीच बुलाए ? क्या बालक का आपके बीच आना कोई आकस्मिक घटना-मात्र है ?

बालक का रात में जागना कई मा-बापों को अच्छा नहीं लगता क्यों ? क्या इसके कारण उनको रात में बहुत जागना पड़ता है ? नाटक, सिनेमा, चौपड़, शतरज अथवा ताश के कारण होने वाले जागरण का हिसाब किससे पूछा जाए ?

किंतु किसी को कुछ पता भी है कि बालक तो अनंत में रमा रहता है ?

बालक के आनंद के लिए तो क्या दिन और क्या रात, क्या सुबह, दोपहर और शाम, सब कुछ समान ही है !

जिस दिन से हम बालक नहीं रहे, उसी दिन से हमारे जीवन मे रात का घना अंधेरा छाया हुआ है।

बालक को तो घनी अंधेरी रात में भी उजाला नजर आता है। इसके विपरीत, अज्ञानी और पापी हृदय में दिन के उजाले में भी घना अंधेरा छाया रहता है।

निर्दोष हृदय ही अंधेरे में उजाले का दर्शन कर पाता है।

अपने बालकों के हित को ध्यान मे रखकर हम नीचे लिखे काम हर्गिज न करें।

हम अपने पड़ोसी से लड़े-झगड़े नहीं। हल्के स्वभाव वाले पड़ोसियो से हम हजार हाथ दूर रहें। ओछे स्वभाव के अपने मित्रो का साथ हम छोड़ दे। दुष्ट स्वभाव के अपने भाई-बहनों को या ऐसे दूसरे सगे-संबधियों को भी हम दूर से ही नमस्कार करें।

अपने दोषों को दूर करने के लिए हम हठ योग का सहारा लें। और यदि बालक को हानि पहुंचती हो, तो उसकी माता के त्याग को भी हम अधर्म न मानें। अपने घर में बालक के लिए हमको स्वर्ग की रचना करनी हो, तो उसके निमित्त से हम कठिन-से-कठिन आत्मवलि देने से भी न हिचकिचाएं !

यदि हम अपने बालक को चाहते हैं, तो किसी भी हालत में हम उसको बिगड़ने न दें। घर में नौकर रखकर हम अपने बालक को न बिगाड़ें। विदेशी खिलौनों की चकाचौंध से हम उसको न बिगाडें। शुरू से ही हिंसा के पाठ पढ़ाकर हम अपने बालक को पशु न बनाए।

क्या हम अपने बालकों को मुक्त नही करना चाहते—अपने विश्वासो

की बेडियो से, अपने एकांगी आदर्शो से, अपने को प्रिय पढ़ाई के बंधनो से, खुशी-खुशी अपने गले मे डाली रूढ़ियो की जजीरों से, शिष्टाचार की जडता से, और परतंत्रता या पराधीनता के पाश से ?

एक बार अपने समाज की अत्याचारपूर्ण उस दासता से हम स्वय मुक्त हो लें, और फिर अपने बालकों को भी उस दासता से मुक्त करा लें। आप यह तो जानते ही है न, कि गुलाम आदमी का बालक तो आखिर गुलाम ही बनेगा ?

आइए, हम फिर सोचे कि अपने बालकों की भलाई के लिए हम और क्या-क्या करें ?

जो आज बालिका है, कल वही गृहिणी बनेगी। जो आज बालक है, कल वही नागरिक बनेगा।

इनके लिए हम क्या करें ?

आज ये हमसे जो कुछ सीखेंगे, कल से वैसा ही आचरण करेंगे।

आज हम जो नहीं करेगे, आने वाले समय मे इनसे वह हो ही नहीं पाएगा।

आज हम जिस चीज का त्याग करेंगे, उसका त्याग करना ये जरूर सीख लेंगे।

आइए, हम फिर सोचें कि अपने बालक के हित के लिए हमको और क्या करना है ?

बालक हमारा भावी नागरिक है। भावी नागरिक का बीज का बालक में मौजूद है। जैसा हमारा बालक होगा, वैसा हमारा भावी नागरिक बनेगा।

आइए, हम फिर सोचें कि अपने बालक के हित के लिए हमको और क्या करना है ?

बालक हमारा भावी नागरिक है। भावी नागरिक का बीज का बालक में मौजूद है। जैसा हमारा बालक होगा, वैसा हमारा भावी नागरिक बनेगा।

आइए, हम सोचे कि अपने ऐसे बालक के लिए हमको क्या करना चाहिए।

बालक भावी कुल का दीपक है।

बालक भावी पीढी का प्रकाश है

बालक भावी जनता का पैगंबर है।

अपने ऐसे बालक के लिए हम क्या करेंगे ?

भगवान् ने हमको बालक इसलिए दिया है कि उसको पाकर हम अपने जीवन को प्रकाशित कर लें।

नया जीवन जीने के लिए भगवान् ने हमको बालक दिए हैं।

हमारे अंदर नई चेतना जगाने के लिए भगवान् ने हमको बालक दिए हैं।

कल्याण के पथ पर आगे वढने के लिए भगवान् ने हमको बालक दिए हैं।

स्वयं भगवान् ने हमको जो बालक लिए है, उन बालकों के लिए हमको क्या-क्या करना चाहिए ?

हम सोचें कि बालक का सुख किन बातों में है।

हम यह जरूर समझ ले कि—

बालक का सुख उसको अपने ही हाथों खाने देने में है। कोई उसको खिला दिया करे इसमें बिल्कुल नही।

बालक का सुख उसको खुद ही चलने देने में है। उसको गोद में उठा लेने में हर्गिज नहीं।

बालक का सुख उसको खुद ही खेलने देने में है। उसको खेलने में हर्गिज नहीं।

बालक का सुख उसको खुद ही गाने देने में है। इसमें नहीं कि कोई उसके सामने गाए या उसको गाने के लिए कहे।

बालक का सच्चा सुख सब कुछ स्वय बालक को ही करने देने में है। इसमें नहीं कि कोई उसके सहज अधिकारों को उससे छीन ले।

●●

बालकों की सृजनात्मक क्षमता की हत्या

कुछ हत्याएं पीनल कोड की धारा के अधीन नहीं आतीं। उन्हें लेकर कानूनवेत्ताओं को अपराध जैसी कोई चीज नजर नहीं आती। कानूनवेत्ताओं की न्याय-नीति संबंधी मर्यादाएं सिर्फ पीनल कोड से बंधी होती हैं। कुछ हत्याएं समाजशास्त्रियों की दृष्टि में हत्याएं नहीं होतीं। जिन हत्याओं को कानूनवेत्ता माफ कर देते हैं उन्हें लेकर समाजशास्त्री लोगो को दंडित करते हें, फिर भी लोक-रुढ़ियों की वजह से समाजशास्त्रियो की सीमाएं मर्यादित है। निति-विशारदों के प्रायश्चित्त-अध्याय का आकार बहुत विशाल है, फिर भी अभी उन में सभी तरह के अपराधो का समावेश नही होता। जीवनशास्त्र अथवा शिक्षाशास्त्र की दृष्टि से देखे तो मनुष्य के हाथों कई प्रकार की हत्याएं होती रहती हैं। शिक्षाशास्त्रियों के पास राज्य, रूढ़ि अथवा धर्म की कोई भी सत्ता नहीं है, इसलिए जीवन के प्रति जो अपराध होते हैं, उनके लिए न कोई पीनल कोड है, न कोई उन्हे निदनीय मानता, न कोई धार्मिक भय है। जीवन के प्रति होने वाला ऐसा एक अपराध है बालक की सृजन-शक्ति की हत्या।

किंतु सृजन का अर्थ क्या है ?

नन्ही-सी कंकरी और गगनचुंबी पहाड़, ओस की नन्ही-सी बूंद और विशालकाय प्राणी, पैरों तले कुचली जाने वाली घास और ताड के समान ऊचे वन-वृक्ष, प्रखर तेज वाला सूर्य और शीतल किरणों वाला चांद-ये सभी सामर्थ्य से परिपूर्ण आदि-सृष्टि के सृजन हैं।

सिर पर तारों से जड़ा आकाश, पैरों तले खनिजों से भरी-पूरी धरती, मनमोहक रंग-बिरंगी तितलियां और मधुर-कोमल कंठ से गाने वाले भांत-भांत के पक्षी, यह समूचा वनस्पति जगत, यह सारा का सारा

जीव जतु जगत यह विशाल पशु पक्षिया की दुनिया सबके सब एक एक से अद्‌भुत, एक-एक से सुन्दर-यह सब सृजनकर्त्ता की सृष्टि हे। बर्फील प्रदेश में रहने वाले हिममानव और प्रचड धूप में रहकर काजल की तरह काले बने अफ्रीकावासी, यूरोप के गोरे लोग, चीन के पीले लोग, नाटे कद के गोरखे और ऊंचे-लंबे पोटेगोनियन-ये सभी एक ही पिता की संतानें है, सबके सब उसी के सृजन हैं।

कथा आती है कि वह एक था। उसने कहा, 'मैं एक हूं, अब अनेक बनना चाहता हूं—एकोइहं बहुस्याम।' जब उसके मन में अपने अदर विराजमान समग्र स्वरूप को प्रकट करने का विचार जागा, तभी इस सृष्टि का जन्म हुआ। उसके अंतःकरण में विद्यमान गूढ़ एव प्रच्छन्न संसार का आविष्कार हुआ अर्थात् इस प्रकृति का निर्माण हुआ।

जब उसने बाहर निकलकर स्वयं को देखने का विचार किया तो उसे यह ब्रह्मांड दिखाई पड़ा। कहा जाता है कि सृजन करना ब्रह्मा का कर्त्तव्य है अर्थात् स्वभाव है। अपने स्वभाव के अनुसरण में से ही यह सारी लीला प्रकट हुई है।

यह तो प्रकृति की बात हुई-प्रभु के सृजन की बात हुई। ईश्वर ने मनुष्य का सृजन किया और उसे अपनी सृजन-शक्ति प्रदान की। मनुष्य के सृजन भी मनुष्य की अनंत-शक्ति के समान की अगणित हैं। इस देश के उपनिषद और भागवत आदिपुराण, कादंबरी और पंचतंत्र, उत्तर रामचरित और मृच्छकटिक, माधनैषध व कालिदास; इसी भांति विदेशो के शेक्सपियर का रोमियो-जूलियट, गेटे का फॉस्ट, दांते व शैली की काव्य-कृतिया-ये सब मनुष्य के हृदय से प्रकट हुए सृजन हैं। साहित्य एक सृजन है, चित्रकला दूसरा सृजन है, संगीत तीसरा सृजन है और स्थापत्य चौथा सृजन है। इस तरह गिनने बैठ जाएं तो मनुष्य के द्वारा बनाई गई अनेकानेक कृतियों को गिनाया जा सकता है।

इस प्रकार क़हना न होगा कि समूचा विश्व प्रकृति के तथा मनुष्य के सृजनों से चारों ओर भरा हुआ है, सुभोभित है।

वर्षा होती है, नदी-तालाब सब छलाछल भर जाते हैं, धरती हरी

साडा पहन लेती ह पेड पौधे मस्ती से डोलने लगते है पशु पक्षी कल्लोल करने लगते हैं, सूर्योदय या सूर्योदयस्त होता है कि पल-पल समूचे आसमान में नए-नए रंग छाये नजर आने लगते हैं, वसंत ऋतु आती है और वनदेवी नव-पल्लवित्त होती है, फल-फूलों से उसकी मोद भर जाती है, मोर-कोयल कलरव करने लगते हैं, भंवरों-तितलियों के रंग-बिरगे पंख फडफड़ाने लगते हैं—ये बस और ऐसे अन्य अनगिनत प्राकृतिक सृजन प्रकृति के नियमानुसार होते ही रहते हैं और होते ही रहेंगे। इनके स्वतत्र विकास में न कोई बाधक बनता और न बन ही सकता है। इनके लिए न तो कोई सामाजिक रूढ़ि का बंधन है और न धार्मिक बेड़ियों की कोई कैद है। यही कारण है कि प्रकृति के तमाम सृजन नित्य नए, सदैव ताजे, सदैव मोहक और सदैव सरस बने रहते हैं। हा, प्रकृति को भी नियंत्रित करने वाले मनुष्य हैं। प्रकृति के वन-वैभव को नष्ट करके रेलगाडियां चलाने वाले, स्वच्छंद भाव से विचरण करने वाले, पशु-पक्षियों को पिंजरों में बंद कर, उनको हंटर जमा कर सरसक के खेल दिखाने वाले लोग यहां मौजूद हैं। प्रकृति को तिजारत का साधन बनाने वाले जड़वादी लोगों से यदि प्रकृति देवी भयभीत न हो उठे, तो कैसा आश्चर्य ! लेकिन अभी तक प्रकृति की हत्या नहीं हो सकी है, न हो सकेगी। प्रकृति के प्राण बड़े ही प्रबल हैं। लेकिन मनुष्य द्वारा किए गए सृजन का हनन लंबे समय से होता चला आ रहा है और होता ही रहता है। जब-जब भी मनुष्य ने अपने सृजन के हनन के खिलाफ बगावत की है, तब-तब स्वयं मनुष्य का हनन हुआ है। इतिहास ऐसे उदाहरणों से अटा पड़ा है। हनन का यह काम हमारी संस्थाए करती हैं, रूढ़ियों की गुलामी में फंसा हमारा समाज करता है, जड़वत बने हमारे शास्त्र करते है, सिर्फ परिणाम देखने वाली हमारी शिक्षण-संस्थााएं करती हैं तथा अज्ञान के अंधकार में निमग्न हमारे घर-परिवार करते हैं। लगता है मानो इन सबने मानवीय आत्मा के आविर्भाव को कुंठित करने का सामूहिक प्रयत्न किया है और नई-नई सोची-समझी कार्यवाही की है। इसके बावजूद कई बीज ऐसे होते हैं जो पत्थर को तोड़कर फूट निकलते हैं और प्रबल आंधी-तूफान में भी स्थिर

बने रहते ह इसी प्रकार कुछ प्रबल आत्माओ ने उपर्युक्त सस्थाओ क सकीर्ण तट-बंधां को तोड़कर सृजन के सागर को उछाला है और उसमे से भांति-भाति के कलात्मक मोतियों का बहुमूल्य उपहार मानव-जाति को प्रदान किया है। इसके विपरीत जहा-जहां बंधनों मे जकड़े हुए गुलाम मनुष्य ने सृजन कार्य किया है, वहां-वहां वह सृजन रुग्ण एवं विकृति बना है, उसने मनुष्य को ऊपर उठाने के बजाय नीचे गिराया है, वहां-वहां उस सृजन का, सृजनकर्त्ता और सिरजनहार का अपमान ही हुआ है। इसके दृष्टांत हैं ये अनाथालय, कलाकारों की निर्माल्य कृतियां, कवियों की उदरपूर्ति वाली हताश काव्यकृतिया, ये संगीत की मजलिसें, नाट्य मच, मासिक पत्र-पत्रिकाएं और प्रदर्शनिया आदि।

अपने ही विचारों का आग्रह रखने वाला मनुष्य अपनी भावी पीढी को अपनी शक्ति तथा अपने ज्ञान की विरासत सौंपने में अपना धर्म और अभिमान समझता है। वही इस बात का निर्णय भी करता है कि बालको को क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। वस्तुतः इस निर्णय मे ही बालक की सृजन-शक्ति का हनन छिपा है।

2

घर और विद्यालय दो ऐसे स्थल हैं जहां बालकों की सृजनशीलता का सहज स्वाभाविक रीति से विकास होता है और यही वे स्थल हैं जहा उनके सृजन को रोकने. विकत करने अथवा निर्मूल करने का काम होता है।

जो लोग अपनी आंखो को खुला रखकर देखते हैं उन्होंने देखा होगा कि बालक धूल में लकीरें खींच रहा है, वर्षा ऋतु में गीली मिट्टी से लड्डू साध रहा है, मिट्टी से पकौड़े अथवा चकला-बेलन बना रहा है, गीली मिट्टी की ढेरी में पैर डालकर मकान बना रहा है अथवा माटी की दीवार बना कर वर्षा के पानी को रोक रहा है अथवा पत्थरों व गारे से छोटा-सा मकान बना रहा है। उन्होंने देखा होगा कि सरकंडे के गूदे से बालक बैलगाड़ी अथवा खाट बना रहा है, उन्होंने देखा होगा कि सरकंडे के गूदे से बालक बैलगाड़ी अथवा खाट बना रहा है, जमीन पर बिखरे पानी या दूध में

उगली डाल कर चित्र बना रहा है कहीं आटे से भरी परात मे हाथों की छाप अकित कर रहा है या तरह-तरह की डिजाइनें बना रहा है, यदि मा ने चावल निकाल रखे हैं तो उन्होने बालक को उसमे गड्ढा बनाकर रगोली या गोलाकृति बनाते देखा होगा। कही बालक हाथ में आई पेसिल से कागज पर यसा कोयले से दीवार पर टेढ़ी-तिरछी लकीरें बना रहा है, कहीं कैंची से अपने या दूसरों के बाल काट रहा है अथवा कागजों या कपड़ों के टुकड़े काट-काट कर तरह-तरह की नई आकृतियां बना रहा है, तो कही बेली हुई रोटी पर कटोरी या गिलास रखकर उसकी मदद से नई-नई ज्यॉमितिक आकृतियां बना रहा है।

यदि आंखें है तो उन्होने बालक को अपने छोटे-छोटे हाथ-पैर हिलाते, तालियां बजाते या नाचते-कूदते देखा होगा। अवश्य ही उन्होने बालक को कभी फूलो की साज-सजावट करते, कभी घर के बर्तनों को सजा-सजा कर रखते, कभी पिताजी की किताबों को सिलसिले से रखते, तो कभी घर में आए मेहमानों के जूते एक कतार में रखते देखा होगा। उन्होंने प्रायः देखा होगा कि बालक अपनी परछांई पर खड़ा होकर अपनी नकल किया करता है या फिर दूसरों की नकल उतारता है।

यदि हमने गौर किया है तो अवश्य ही नन्हे बालक को बर्तन गिरा कर उसकी ध्वनि पहचानने, दरवाजे की सांकल खटखटा कर, घटी बजाकर अथवा ढोल-झाझर बजाकर उनको ध्वनि-सगीत सुनने की कोशिश मे लीन देखा होगा। आपने देखा होगा कि बालक किसी आलमारी पर बार-बार अपने हाथों की थाप देता रहता है या खाली झूले को घटों झुलाता है या खाट पर बैठकर अपने पैर हिलाते-हिलाते एक प्रकार की ताल का अनुभव करता है। हमने छोटे बच्चों को हंसते हुए, आपस में मिलकर एक-दूसरे को प्रेम-चुंबनों से नहलाते तथा निर्व्याज प्रेम का अनुभव करते देखा होगा। हमारे लिए ऐसे बालक नितांत अपरिचित-अनजान नहीं होते, जो दिन-दिन भर कोई एक शब्द गुनगुनाते फिरते रहते है अथवा किसी कहानी की तुकबंदी को कई-कई दिनों तक याद कर-करके रटते रहते हैं, अथवा जो कभी आसमान के नीचे लेटे-लेटे गगन-विहारी

की रचना करते है या गर्मियो की किसी दोपहरी म अर्द्ध जागृत अर्द्ध-निद्रित अवस्था मे जो प्रकृति की या मनुष्य का कृति की छाप पर से अथवा घर-बाहर के अनुभवों से रंग-बिरगे सपनो की रचना करते रहते हे।

बालक की ये तमाम कृतियां बाल-सृजन के व्यक्त-अव्यक्त, स्पष्ट-अस्पष्ट छोटे, लेकिन सादे व सुंदर नमूने है। इनमे कहीं संगीत है, कही साहित्य है तो कहीं कला है। स्थापत्य और शिल्प के बीज भी इनमें है। कदाचित किसी चित्रकार को बालक की इन छोटी-छोटी रेखाओ मे समय तथा साधनों का अपव्यय नजर जाए, कदाचित किसी गवैये को बालक का गायन कर्णकटु और बेसुरा लगे; कदाचित किसी नामी साहित्यकार की दृष्टि से बालक की नन्हीं कली-सी खिलती वाणी व्यर्थ का प्रलाप मात्र हो। यदि ऐसा लगता है तो भले ही लगे। लेकिन जो व्यक्ति बाल-मन के गहन-गभीर प्रदेश से सुपरिचित है, जिसने बालक के विकास को एक-एक डग अपनी नजरों से देखा है, उसे पूर्ण विश्वास है कि इन्हीं रेखाओं के पीछे भावी चित्रकार खड़ा है, गारे-पत्थर के नन्हे मकानो के पीछे किसी वास्तुकला-विशारद की आत्मा विद्यमान है, गारे के बने छोटे-छोटे साचों मे मोम की पुतलियां बनाने वाला या संगमरमर का अद्भुत शिल्प रचने वाला कोई समर्थ शिल्पी छिपा है; छोटी-छोटी इल्लियो को संग्रहीत करने वाला या तितलियों के पंखों और उनके सुंदर रगो को देखने वाला या तो कोई चित्रकार है या कोई शोधकर्त्ता है या विश्व-प्रेमी है। ऐसा व्यक्ति छोटे-छोटे दो पत्तियों वाले आम के नन्हे पौधे मे किसी माली की भांति आम के दर्शन करता है, एक ग्वाले की छोटी-सी बछिया में दूध-दही-घी के दर्शन करता है। इसी तरह वह व्यक्ति भी बालकों के छोटे-छोटे सृजन में कला की विश्वविख्यात कृतियों के-पोम्पई के स्तंभों, ताजमहल के सौंदर्य, रैफेल व रविन्द्रनाथ की चित्रकृतियों, टैगोर की गीतांजली अथवा टालस्टाय की लघु-कथाओं के दर्शन करेगा।

लेकिन यह सब वही कर सकता है जिसके पास बालकों के इस वैविध्यपूर्ण सृजन को देखने-समझने की दृष्टि हो। ऐसे ही लोग बाल-सृजन

का सम्मान करते है, उनमे रस का संचार करते है, उनकी सामग्री को समृद्ध बनाते है तथा उन्हें प्रोत्साहित करते है।

पर जरा हम अपने घरो मे थोड़ा झाककर तो देखें और इस बात की छानबीन तो करें कि वहां बाल-सृजन की क्या दशा है। आप किसी भी घर में जाकर देखेगे तो वहां आपको कुछ इस तरह की बातें सुनने को मिलेगी—'हाय-हाय, अरे ओ नासपीटे। तूने गूदे हुए आटे का यह चूहा क्यों बनाया है? क्या यह किसी मुसलमान का घर है? ब्राह्मण के घर मे तेरे जैसा यह काफिर कहां से पैदा हो गया?' 'मुए। अब तो तू चुप हो जा। बहुत राग अलाप लिया। मेरा तो सिर दुखने लगा है। बड़ा गवैया बन गया है।' 'अबे गधे ! तूने यह दीवार क्यो काली कर डाली? बस, कोयला हाथ आया नहीं कि तूने रेलगाड़ी, पुल और नदियां बनाई नही ! याद रख, इनसे पेट नहीं भरेगा और तू भूखा मरेगा, भूखा !'

आप किसी दूसरे घर के पास से निकलेंगे तो वहां आप देखेगे कि बेटे ने पिता की स्याही से अपना मुंह रंग लिया है और मुंछे बना ली हे। बाप बेटे को चांटा जमाते हुए कह रहा है, 'बोल, फिर कभी करेगा ऐसे? कहने दे तेरे मास्टरजी से।'

किसी बालिका को अपने मन की मौज मे नाचते या हाथा-पैरो से अभ्यास करते देखकर उसकी मां उससे कह रही होगी, 'अरी ओ अभागिन। तू जरा इधर मर ! अभी धुनती हू तेरी पीठ। ये नखरे यहा नहीं चलेंगे। ये तो नायको के लच्छन हैं।'

कोई बालक अपने भीतर की नाट्यवृत्ति को व्यक्त करने के लिए पक्षियों जैसी आवाज निकालेगा अथवा किसी के हावभाव की अनुकृति कर रहा होगा कि मां उससे कह रही होगी, 'तू बडा नौटंकी बन रहा है। याद रख, अगर तूने किसी की नकल उतारी तो पिटाई कर दूगी।'

बालक-बालिकाओ की इच्छा होती है कि मिलकर साथ-साथ खेले। वे सहजीवन की पहली सीढी पर चढ़ना चाहते हैं। प्रेम की दुनिया के अव्यक्त अनुभवों को अपने अनुभवों की सीमा में लाने का प्रारंभ करते है, तभी खिड़की में से झांककर मां डपट भरी आवाज मे कहती है—'अबे ओ

नादीदे ! उधर कहां जा रहा है, लड़कियों के संग खेलने ?' दूसरी तरफ से लड़कियों को मा कहेगी, 'भला इन लड़कों के साथ तुम कैसे खेल सकती हो ? वे ठहरे लडके !'

मान लें कि घर में कोई नन्हा बालक है। बडी बहन की इच्छा है कि छोटे भाई को खेलाए। भाई के प्यार मे पगी बहन अपने छोटे भाई को गोदी मेंलेकर सीने से दबाती हुई उसे चूमने लगती है कि तभी मा गरजती हुई आकर कहती है, 'अरी ओ अभागिन ! क्या तू इसे मार डालना चाहती है ? हाथ मे से छूट जायेगा तो ? नीचे लिटा दे इसे !'

पिता भी मा से कुछ कम नही। उन्हे देखते ही बच्चे सहसा सहम जात्ते हैं।किसी कोने में छिपकर बैठ जाते है, मां चाहे जितनी मारपीट क्यो न करती हो, पर बालक उसकी गोद में जाकर छिप जाते हैं। भला ऐसे पिता के साये में सृजन कैसे संभव है ? यदि स्याही से हाथ गंदे हो गये या पेंसिल से दीवार पर लकीरें खींच दी तो पिता कहेगे 'चल, रख दे यह सब एक तरफ। सबक याद करने बैठ।' सृजन की ऐसी हत्या के अनेकानेक उदाहरण हैं, तभी तो आज की हमारी मामूली-सी कला, निष्प्राण-सा साहित्य और रसविहीन नाट्य-प्रयोग हमारी आखों के ही सामने होली की तरह धू-धू करके जलते हैं। इन सबके उपरांत हमे आशा है कि कोई ऐसा बिरला पिता प्रकट होगा जो अपने बालक के प्रत्येक बोल में साहित्य रूपी अमृत के दर्शन करेगा, उस अमृत का पान करेगा और उसका पोषण करने वाला बनेगा, आशा है कि कोई ऐसा कला-रसिक पिता मिल जायेगा, जो अपने बालक को मूंछे बनाने के लिए रंग लाकर देगा अथवा कपड़ों के टुकड़ों को रंगने के लिए तरह-तरह के रगों की व्यवस्था कर देगा और रंग-बिरंगी खड़िया मिट्टी लाकर दिया करेगा, अवश्य ही कोई ऐसी उदार मां मिल जाएगी जो बालक को हल्दी, हींग, नमक, मिर्च इकट्ठे करने देगी और उनसे रंग बनाने के प्रयोग करने देगी, आशा है कोई ऐसी कला-रसिक मां भी होगी, जो गारे-माटी लगने से अधिक सुंदर बने अपने बालक को ललक के साथ उठाकर उसको चूमेगी और खड़िया-मिट्टी से या पेंसिल से बालक द्वारा बनाई गई आड़ी-टेढी

रेखाओं को संभाल कर अपनी तिजोरी में रखेगी और किसी चित्रकार को अपने घर आया देखकर उससे कहेगी-'देखिए, ये चित्र मेरी इस पागल बेटी ने बनाए हैं।' अथवा कोई ऐसी अलबेली मां भी मिल जाएगी जो दूर बैठी अपनी मनमौजी पुत्री की हलचलों का आनंद लेती होगी। पुत्री किसी चट्टान के पास लेटी-लेटी आकाश के तारों को और उड़ते हुए पक्षियों को देखकर किसी सही-गलत काव्य-अकाव्य की रचना में लीन होगी और मां दूर बैठी उसके शब्दों को लिख लेती होगी और उस पर अपने भाष्य की रचना का आनंद लूटती होगी। पर यह तो अपवाद होगा—खारे समुद्र में मीठे पानी की धारा की भांति।

3

अब जरा हम यह देखें कि पाठशालाओं में बालकों के सृजन का हनन किस तरह से होता है। घर की तुलना में विद्यालय बाल-सृजन का एक बड़ा कत्लखाना है। घर में बालकों को आजादी मिलती है, वैसी विद्यालयों में कत्तई नहीं होती। विद्यालय कहता है, 'बस, लिखो, पढो, गिनो, इतिहास याद करो, भूगोल रटो, संगीत रटो, चित्र रटो।' भला इसमें सृजन कहां है ? जहां बिना अर्थ समझे, बिना रुचि के, बिना अनुभव के महज रटना ही रटना हो, वहां साहित्य, संगीत और कला का शिक्षण निष्फल ही होता है। ऐसे में कला का सृजन सर्वथा असंभव है। कला का मूल गहन व तीव्र अनुभूति में निहित है। जब कोमल-कठोर, कडवी-मीठी, तीव्र-मंद भावनाएं कभी-कभार आपस में टकराकर झनझना उठती हैं, तब कला का जन्म होता है। कला जीवन-मंथन से प्रकट होती है, वह समूचे जीवन का निष्कर्ष होती है। कला तो जीवन-सौंदर्य का परिमल है। ऐसी कला का सृजन वहां कैसे हो सकता है जहां मात्र रटने ही रटने का शिक्षण दिया जाता हो ?

जब बालक अपने घरों के अनुभव बड़े ही उत्साह के साथ अपने साथियों को सुनाने लगते हैं, जैसे 'आज हमारे घर में यह हुआ और वह हुआ', 'हमने तो आज लड्डू खाए', 'आज हमारे घर में एक नया भाई आया है, उसकी हथेलियां रेशम जैसी मुलायम-मुलायम और गुलाबी हैं',

'मुन्नी तो अव घर में दौड़ने-फिरने लगी है और वह सबको चूमती रहती है' आदि-आदि, कि तभी मास्टरजी भौहे ताने मुह बिगाडकर बोल उठते है—'ऐ, चलो पहाडे लिखो', या 'मैं बोलता हूं तुम लिखो— 'परोसा', 'भट्टी' या 'लिखो—एक लड़के दो कान हैं तो दस लडकों के कितने कान हुए ?' अथवा शिक्षक बोलते हैं—

हे ईश्वर रटते तुम्हें
बड़ा तुम्हारा नाम।
गाते हरदम गुण तेरे
पूरण करना काम।।

बालक को विद्यालय की चहारदीवारी में बंद कर देने के बाद उसकी कक्षा की एकाध खिड़की यदि सौभाग्यवश खुली रह गई हो और उसके द्वारा बालक को उदार प्रकृति का अपूर्व दर्शन सहज होता रहता हो तो अध्यापकजी इस डर से कि कही बालक का ध्यान कक्षा की पढाई से हट न जाए, उस खिड़की को ही बंद करवा देते हैं।

हम बालक को वर्तनी का तथा संयुक्ताक्षरों का पक्का अभ्यास करा देते हैं। व्याकरण में एक भी गलती न हो, इसके लिए हम बालक के और अपने खून का पानी करते है। वर्ष के अंत तक वही की वही पुरानी तीन कहानियां बार-बार भौडी रीति से बालकों के पेट से निकलवा लेते है। तोते की तरह उन्हें कविता रटाते हैं और फिर एक डॉक्टर की तरह बेदर्दी से व्याकरण, पृथक्करण, पिंगल, व्युत्पत्ति आदि औजारों के द्वारा चीर-फाड़ करके बालकों की धज्जियां उडा देते हैं। इसी को हम भाषा व साहित्य का अध्ययन करना कहते हैं। इसी से हम बालको से साहित्य के क्षेत्र में नई रचनाओ और नए सृजन की अपेक्षा रखते हैं।

चित्रकला और संगीत का स्थान तो बालकों के शिक्षण में वहुत अल्प होता है। सीधी रेखा द्वारा चित्रकला का और सारेगम से सगीत की शिक्षा का आरंभ करना ठीक वैसा ही है जैसे मृत देह से जीवन का आरभ करना।

जिस विद्यालय की दीवारों पर जाले लटक रहे हैं या झाड-झंखाड़ खडे हैं, जिसकी दीवारों पर अगर कुद टंगा भी है तो शायद कोई

फटा-पुराना एकाध चित्र, दीवारों का पलस्तर उखडा हुआ है, जगह-जगह गड्ढे बन गए हैं, जहां पानी पीने के वर्तन न मांजे जाने से काले और गदे हो गये हैं, अथवा जिस विद्यालय के आसपास सब्जीमंडी के जैसा शोर मचा रहता है, सड़क पर होने वाली कहा-सुनी और तकरार की आवाज जहां बालकों के कानो में सहज ही पड़ती रहती है; जहा बालक खडे-खडे या तो गली-कूचों की गंदगी देखते है या मोटरों-ट्राम-गाडियों की दौड-भाग देखते हैं या नगरपालिका की कचरा-गाड़ी को देखते रहते है, अथवा जिस विद्यालय में सभी बालको के बैठने लायक पर्याप्त स्थान न होने से गंदे व बदबू भरे बालक आपस में एक-दूसरे की गंदगी को बढाते हैं, जहां शिक्षकों की गंदी पोशाकें और उनके गदे चेहरे उस गदगीमें वृद्धि करते हैं, जहां विद्यालय की टूटी बेचें, बेकार पड़े, श्यामपट्ट, सड़े हुए डस्टर, बालकों और अध्यापकों के बेतरकीब बिखरे जूते विद्यालय की शोभा को नाना प्रकार से बढ़ाते रहते हैं, उस विद्यालय में सगीत अथवा शिल्पकला की आत्मा किस प्रकार विकसित हो सकती है ? वहा नूतन सृजन कैसे संभव है ?

सृजन-कार्य न पाठ्यक्रम के अधीन है, न किसी समय-विभाग-चक्र के। गणित में मन न लगने पर यदि कोई बालक सवाल हल करने के बजाय अपनी पट्टी पर चित्र बनाए और संयोगवश शिक्षक उसका चित्र देश ले तो आप सोच लीजिए कि उस बालक को अपने सृजन-कार्य की कितनी भारी कीमत चुकानी पड़ेगी ? उसके गाल पर एक तमाचा पड़ेगा, पट्टी का प्रहार होगा और गणित के श्यामपट्ट के समक्ष गंभीर चेहरा बनाकर स्थिर खडा होना पडेगा। कक्षा में व्याकरण की पढाई के चलते यदि किसी बालक के दिल में कभी घर पर सुने किसी गीत की कड़ी गुनगुनाने की लहर आ जाए और वह गुनगुना उठे तो उसे तत्काल सुनने को मिलेगा—'ऐ, चुप ! कौन गड़बड़ कर रहा है ? इधर आ। बड़ा गवैया आया है। गाना ही है तो अपने घर जाकर गा, तुम यहां गाने के लिए नही आए हो, समझे !' यदि कोई शिक्षक बालकों को कक्षा में कपड़े के टुकड़े से गोला, हरिण या खरगोश बनाते, कागज से नाव, टोपियां या दवात बनाते, किसी डोरी से मोर का पंजा बनाते देख ले तो क्या वह उन्हे 'प्रसाद' दिए बिना रहेगा ? बालकों को प्रकृति के प्रागण में ले जाने, वहां

उनका प्रकृति का गोट म घटो लाटन देने बदरा की भाति पन्ड पर चढने व कूदन देने, कलकल वहती नदी क किनारे ले जाकर उन्हे अपनी अजलियसों से जी भरकर पानी पीने देने, जंगली फूलो को तोड़कर उनकी मालांए बनाने, रेशो से रस्सी वंटने और ऐसे ही भात-भांत के काम करने देने की व्यवस्था क्या आज के पाठ्यक्रम में है ? यदि नहीं है तो वालको के सृजन का प्रश्न किससे पूछा जाए ?

कुछ पाटशालाओ में बालकों के लिए सृजनात्मक विषयों की सामग्री इकट्ठी की जाती है। वहां बालको को बंगला बनाते, चटाई गूथते, रंग भरते, कागज काटते या सिलाई-कढाई का काम करते देखते है। वहां के शिक्षकों को हम बालकों के साथ अनेक प्रकार के काम करते देखते हे। वे उन्हे कहानियां सुनाते है, गीत गवाते हैं, वे उनके साथ नाचते, कूदते, खेलते और हंसते-हंसाते हैं। वहां हमको छोटे-छोटे बाल-संग्रहालय देखने को मिलेंगे। सुंदर-सुंदर खिलौने मिलेंगे, तरह-तरह की गुड़ियाएं गुड्डे मिलेंगे। पर साथी ही साथ ऐसी पाठशालाओ के सृजनात्मक वातावरण मे हमे लालच और इनाम के बनावटी रस की बू अवश्य आएगी।

शिक्षक के अनुकरण में सृजन नहीं है। बनावटी उत्साह के नशे मे किया गया सृजन नहीं कहलाता। जब आंतरिक उमंग से, मानो अंतर को ही खाली करने या व्यक्त करने के लिए जहां अतर स्वय प्रकट हो जाता है, वही सृजन कहलाता है। इस प्रकार का सृजन काव्य के, संगीत के, चित्र के अथवा किसी भी ललित कला के माध्यम से हो सकता है। सृजन स्वतत्रता की देन है। जब सृजन स्वय-स्फूर्त होता है, जब सुजन स्वानुभव से उपजता है, जब विद्यालय ऐसे सृजन की व्यवस्था करता है, वह सच्चा विद्यालय है। इससे भिन्न दूसरे विद्यालयों को तो मैं कतलखाने ही कहूंगा। जब तक हमारे विद्यालय ऐसे सृजन के लिए वांछित सभी प्रकार की व्यवस्था नहीं कर लेते, तब उन्हें अपना अस्तित्व बनाये रखने का कोई अधिकार नहीं है।

4

उपर्युक्त विवेचन से जाहिर है कि आज के हमारे विद्यालय सृजन के कितने विरोधी हैं ?

सच्चा सृजन शांति, प्रसन्नता, एकाग्रता, निर्भयता, स्वतंत्रता एवं

स्वय-स्फूति द्वारा प्रकट होता ह। घरो, [illegible] अथवा समग्र जीवन मे जहा इन चीजों का अभाव होगा, वहां सच्चे सृजन को लेकर संशय ही वना रहेगा। हमारी वर्तमान कलाकृतियों की दरिद्रता तथा हमारी ह्रासमान रसिकता इस वात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि हम स्वाभाविक सृजनात्मक कार्यो की दृष्टि से आज कहां हैं ? यदि हम अपने समग्र जीवन पर दृष्टि डालकर देखें तो ज्ञात होगा कि हमारा जीवन सत्य से कितनी दूर चला जा रहा है। ऐसे में असत्यजीवी जनता के जीवन में से सत्य-स्वरूप सृजन कैसे संभव है ?

सृजन के प्रखर शत्रु हैं दंड, पुरस्कार, परीक्षा और प्रदर्शन। दंड के भय से या तो आदमी छिपकर सृजन करता है या फिर सृजन की उसकी प्रेरणा, उसका प्राण भय के मारे विलुप्त हो जाता है। छिपे हुए अथवा विकृत सृजन के उदाहरण आज हमारे सामने जेलखाने, दवाखाने, पागलखाने खडे हैं। पुरस्कार और स्पर्धा के कारण उत्पन्न हुए स्वार्थपरायण व्यापार-धधे, युद्ध तथा राजनीति हमारे समक्ष मौजूद ही हैं। हम जगह-जगह देख रहे हैं कि एक तरफ परीक्षा के कारण बहिमुख बना मनुष्य कितना छिछला, दभी, ढोंगी तथा ठग बन चुका है और वह कितना मिथ्याभिमानी व अहंकारी बन चुका है। दूसरी तरफ हम यह भी देखते हैं कि वही मनुष्य कितना हताश, निरुत्साह, अपनी ही आत्मा का अपमान करने वाला तथा जीवन-रस से विहीन वन चुका है। प्रदर्शनो ने हमे परजीवी, खुशामदी और गुलाम बना डाला है। आज के हमारे कई रगमंच, सर्कस, संगीत-सम्मेलन और नृत्यांगनाओं के नाच ऐसे ही प्रदर्शनो के प्रतिफल हैं। उपर्युक्त चार कारणों से मनुष्य की आत्मा के सृजन या तो विकृत होते जा रहे हैं। यदि हमारे घर और विद्यालय बालकों को इन बुराइयों से बचा सकें तो सच्चे सृजन की आशा की जा सकती है अन्यथा बालकों के तथा समूची जनता के सृजन पर तलवार तो लटक ही रही है।

●●

बालकों के भी कान होते हैं

बाहर के कोई व्यक्ति हमसे मिलने आए हो, वे अपरिचित हों और नए हो, तो उनकी उपस्थिति मे हम सोच-समझकर ही बोलते हैं। हम सोचते है कि अगर इस तरह बोलेगे, तो उसका ऐसा अर्थ होगा। इस कारण हम अपनी वाणी पर अंकुश रखते हैं। जब हम किसी के घर जाते हैं। तो वहां भी हम इस नीति का पालन करते हैं।

जब हम अपने मित्रों और घर-परिवार के लोगो के बीच होते हैं, तो वहा हमारा व्यवहार दूसरे ही प्रकार का होता है। वहा हम खुले दिल से बोलते है। बाहरी शिष्टता का और अपने बीच आए व्यक्ति का सम्मान करने का सामाजिक विचार मित्रो के बीच कुद कम ही रहता है। इस कारण वहां कई ऐसी बातें होती रहती है, जिनको वाहर से आए हुए लोग सुनने को तैयार न हों, अथवा सुनकर चौंके। ऐसी स्थिति में खेल-कूद की या हसी-मजाक की कुछ बातें सहज ही होती रहती हैं और वे किसी को अनुचित भी नहीं लगतीं।

घर की मडली का घेरा इससे भी कुछ कम करे, तो उसमे घर-घर के ही लोग रह जाएगे। उनके बीच तो तरह-तरह की कई बातें होती रहती हैं। बात करते समय उनके मन में इस बात की चिंता कम ही रहती हे कि दूसरे लोग क्या सोचेगे ? वे अधिकतर जो दूसरो की ही बात करते होते है, बाहर का बंधन कम-से-कम होने के कारण वे अधिक-से-अधिक खुलकर बात करते हैं। प्रायः उस समय की उनकी बातें शिष्टता का भी ध्यान नही रखतीं। इसलिए असल में वे जैसे होते है, अपनी वातों के रूप में वैसे ही दिखाई पड़ते हैं।

घर के लोगों मे से भी जब बडे वच्चे और दूसरे छोटे-बड़े लोग दूर होते हैं, तो स्त्री-पुरुष के बीच की बातें कुछ दूसरा ही स्वरूप ले लेती है।

ऐसे समय म व अपनी वास्तविक कुलीनता या अनार्यता को अपनी वाणी द्वारा व्यक्त करते है। उस समय उनको किसी का डर नहीं रहता। उनक मन मे इस बात का विचार तक नही रहता कि कोई उनके बारे में क्या कहेगा ? जो कुछ भी उनको अच्छा लगता है और जो उनकी जबान पर आ जाता है, उसको वे कहते रहते हैं। इस एकात के अवसर पर बहुत मीठी बाते भी कही जाती हैं और कडुई से कडुई बातें कहने का भी यही मोका होता है।

इन सब अवसरो पर हमारे बालक तो हमारे आसपास रहते ही हे। बालक हमारे साथ रहते ही हैं। बालक हमारे साथ रहते हैं। वे मनुष्य होते ही है। उनके पास उनके अपने कान होते हैं। उनकी अपनी समझ भी होती है। वे मनुष्य होते ही हैं। उनके पास उनके अपने कान होते हे। उनकी अपनी समझ भी होती है। वे हमको बराबर देखते ओर पहचानते रहते है। संगति के कारण उन पर हमारी छाप भी पडती रहती है।

जब अलग-अलग अवसरों पर बालक हमको अलग-अलग ढग से बोलते सुनता है, तो पहले तो वह बडी परेशानी महसूस करता हे। अभी-अभी इस घर में पिताजी और माताजी, दोनो, आपस मे झगड रहे थे। लेकिन बाद में बाहर वालों के आने पर वे परस्पर इस तरह बात करने लगे, मानो बड़े प्रेम से बात कर रहे हो और वे वैसी बाते करने भी लगे। अभी-अभी पिताजी ने जिस भाषा का उपयोग किया, वह उनको शोभा देने वाली नही थी। वे अपने नौकर पर नाराज हो रहे थे। लेकिन जब एक दूसरे भाई उनसे मिलने आए, तो वे उनकी बातों को बडी शाति के साथ सुनते रहे, जबकि उन भाई कि बातें तो मन में गुस्सा पैदा करने वाली थी, पिताजी ने उनसे कुछ भी नही कहा। पिताजी विद्यार्थियों के सामने तो एक भी शब्द कम या ज्यादा बोलते नही हैं। वे उनके साथ हंसते भी है, तो नपा-तुला ही हंसते है। लेकिन जब मेरे अमुक काका या अमुक मामा आते हैं, तो पिताजी उनके साथ लगातार बोलते रहते हैं और खूब खिलखिलाकर हसते हैं। माताजी अभी-अभी तो घर में छोटी बुआजी को गालियां दे रही थीं और जब वे आई, तो आइए, आइए, कहकर खड़ी हो गई ओर उनके लिए दरी बिछा दी। जब पड़ोसी की बेटी अकेली हमारे घर में आती है, तो पिताजी और माताजी, दोनों उससे कहते हैं, 'भाग

जाओ . यहा इस समय क्यो आई हो ? बस, जब भी मन हुआ, तभी आ जाती हो ! अपने घर में तुम्हारे पास कोई काम है या नहीं ?' लेकिन जब वह अपनी मा के साथ आती है, तो काकाजी उससे कहते हैं, 'कौन चपा बहन आई हैं ? कहो, आज इस समय कैसे आई हो ? लगता है, आज तुम जल्दी जागी हो, आओ, इधर आओ, मैं तुमको कुछ दूंगा। रोज जल्दी आओगी, तो इस नंदू के साथ तुमको भी कुछ न कुछ मिलता रहेगा।' पिताजी और माताजी, काकाजी और मामाजी, रमेश भाई और गणेश भाई सब बार-बार अलग-अलग अवसरों पर कैसी अलग-अलग बातें कहते रहते है ? बालक अपनी आखों से सब कुछ देखता है और अपने कानो सब कुछ सुनता है। वह मन-ही-मन सोचता है, 'भला, ये सब ऐसा व्यवहार क्यों करते हैं ?'

धीरे-धीरे बालक इस सब बातों का अभ्यासी बनता जाता है। वह भी कई तरह के स्वाग भरना सीखने लगता है। अलग-अलग लोगों के साथ अलग-अलग व्यवहार करने लगता है। अपने परिवार के बडों और बूढों के विसंगत जीवन में से वह विसंगति के, दंभ के, बाहरी शिष्टता के और अंदर की अप्रामाणिकता के पाठ सीखने लगता है। इस सबका परिणाम यह होता है कि जैसे हम होते हैं, जैसा हमारा व्यवहार होता है, जैसी हमारी स्थिति होती है, उसके अनुसार हम अपना सब कुद अपने बालक को देते रहते है सच तो यह है सच तो यह है कि इन सब बातो मे बालक हमारा वारिस बन जाता है।

हम अपने जीवन में एकरसता, एकरूपता और एकता के संवाद को उचित और सही स्थान देगे, अथवा यह मानकर कि बालक के पास उसके अपने कान हैं और उसकी अपनी समझ हैं, इसलिए हम सब कुछ उससे छिपाकर ही करते रहेंगे ? जब भी हमारा मन बने, हम धीमे-धीमे इस काम को अपने हाथ में ले और अपने जीवन के इस प्रश्न का हल हम स्वय ही खोजें। लेकिन इस बीच हम यह अवश्य याद रखें कि बालकों के भी अपने कान होते हैं।

●●

बालकों को क्या पसंद है ?

बालको को क्या पसंद है ? व्यवस्था या अव्यवस्था ? शाति या कोलाहल ? काम या निकम्मापन ?

आमतौर पर लोग यह मानते है कि बालको को अव्यवस्था अच्छी लगती है, क्योकि बालक अव्यवस्थित रहते हैं और वे अव्यवस्था उत्पन्न भी करते हैं। लेकिन दरअसल यह ख्याल गलत है। बालकों को तो व्यवस्था ही पसंद होती है, क्योंकि मनुष्य का मन व्यवस्था-प्रिय होता है। अव्यवस्था में वह घुटन का अनुभव करता है। उससे उसको परेशानी होती है। अव्यवस्था के चलते उसको कुछ सूझता ही नही। हम घर मे बालक के लिए सुव्यवस्थित वातावरण उत्पन्न करते नहीं और खुद छोटा होने के कारण बालक बेचारा घर की बड़ी अव्यवस्था को व्यवस्थित कर नहीं पाता। इसलिए अपनी इस आकुल-व्याकुल स्थित में उसको जैसे-तैसे अपने घर की प्रचलित अव्यवस्था के बीच ही जी लेने का रास्ता खोज लेना होता है। और इसी को हम बालक की अव्यवस्था कहने लगते हे। बालक की अव्यवस्था तो उस बेचारे को परेशान किए रहती है और वह तो हमारे अव्यवस्थित वातावरण में ही उत्पन्न होती है !

अक्सर लोग यह मानते हैं कि बालकों को तो हल्ला-गुल्ला और गडबड़-घोटाला ही अच्छा लगता है। उनको शांति अच्छी लगती ही नही। वे कहीं गुपचुप बैठना जानते ही नहीं, क्योंकि वे स्वभाव से ही चंचल होते है। लेकि यह धारणा गलत है। बालक तो हल्ले-गुल्ले से और गड़बड़-घोटाले से बहुत परेशान रहता है। उसके नन्हे-नन्हे ज्ञान-तंतु जोर-शोर वाली आवाज से बड़ी बेचैनी अनुभव करते हैं। उन पर उसका बहुत जोर पडता

ह रोज-रोज न जाने कितनी निरर्थक आवाजे उसके कानो मे बेरहमी के साथ टकराती ही रहती है। पास-पडोस के लोग भी चीखते-चिल्लाते रहते है। लोग अपने दरवाजों को खटखटाये रहते हैं। बर्तनो को बराबर को बराबर पटकते और झनझनाते रहते हैं। और यह सब कुछ बेमतलब आर बिना वजह होता ही रहता है। इस हल्ले-गुल्ले से बालक का दिमाग थक जाता है। इस हो-हल्ले के बीच अपनी बात दूसरो को सुनाने के लिए बालक को अपनी नन्ही-सी आवाज को बहुत तानना और ऊंचा उठाना पडता है। उसको नाहक अपना गला दुखाना पडता है। लेकिन बालक बेचारा करे भी तो क्या करे ? इस हल्ले-गुल्ले और गड़बड़-घोटाले के बीच ही जैसे-तैसे जी लेने का रास्ता उसको खुद ही खोज लेना होता है और रास्ता उसको यही मिलता है कि दूसरों के साथ-साथ वह भी हल्ला मचाता रहे और गडबडी फैलाता रहे। इस सबके कारण बालक के ज्ञानतंतु थक तो जाते ही है।

अक्सर लोग यह मानकर चलते है कि बालकों को काम करना अच्छा लगता ही नहीं है। इसलिए उनसे जबर्दस्ती काम करवाते रहना चाहिए। लेकिन लोगो की यह धारणा बिल्कुल गलत है। बालक तो स्वभाव से ही कर्म-प्रिय होते है। कितु अपने बडो और बूढ़ों की इस दुनिया में उनको उनकी अपनी रुचि का काम करने की कोई सुविधा मिलती नहीं। काम के लिए जरूरी साधन भी सुलभ होते नहीं। काम करने के लिए कोई स्वतत्र जगह भी उनको नसीब होती नहीं। तिस पर बडों की ललकार या डांट-फटकार तो बालकों को कभी भी सुनाई पड सकती हैं, 'सुनो, तुम वहां क्या कर रहे हो ? उसको हाथ क्यों लगा रहे हो ? इसको क्यों उठा रहे हो ?' ऐसी अनिश्चितता के बीच ही बालको को अपने सारे काम करने पडते हैं। इसी कारण है कि आगे चलकर बालक धीरे-धीरे काम से जी चुराने लगते हैं और वे निकम्मे बनने लगते है, तो भला, इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है ? जिनको बालकों की शक्ति में विश्वास ही नहीं है, वे स्वय यह कैसे देख और समझ सकते है कि बालक क्या-क्या करना जानते हैं और कितने काम वे कर लेते है ?

दूसरी तरफ बालक जिन कामो को अपनी रुचि और मर्जी के साथ, अपनी ही सूझ-समझ से कर सकते है, उन कामो को करने की सुविधा और साधन उनको मिलते नहीं हैं और जिन कामों मे उनकी रुचि और गति नहीं होती, वैसे काम उनको जबर्दस्ती करने पड़ते हैं। ऐसी हालत मे यदि बालक उन कामों को करना पसंद न करें, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? इन्हीं कारणों से घर के बड़-बूढ़े यह मानने लगते हैं कि बालको को तो काम करना पसद ही नहीं होता। नतीजा यह होता है कि बालकों मे काम करने की जो अपार शक्ति भरी रहती है, उसका कोई अदाज उनको कभी लगता ही नहीं।

●●

अंधविश्वास की शिक्षा

घर के छप्पर पर बैठा पडुक बोल रहा है।

मां कहती है, 'सुनते हो ? हमारे छप्पर पर पडुक बोल रहा है। रोज-रोज पंडुक का बोलना अच्छा नहीं होता।'

पिताजी पत्थर मारकर पंडुक को उड़ा देते हैं। छोटा बच्चा देखता रहता है।

गाव से लौटकर पिताजी कहते है, 'बस एक धरम धक्का ही लगा। मै जानता ही था कि काम बनेगा नही, क्योकि सामने एक विधवा मिल गई थी।'

रात पडी। खूसट बोलने लगा। मां बोली, 'अररर ! यह खूसट तो हमारे पीछे ही पड़ गया हैं।'

कुत्तों को भगाती हुई पड़ोसिन कह रही है, 'अरे, इन कुत्तों को तो देखो। ये किस बुरी तरह रो रहे है। जरूर ही कोई अनहोनी होने वाली है।'

बुआजी बोलीं, 'आज तो यह तवा हंसा। जरूर ही कोई मेहमान आएंगे।'

रात ब्यालू के बाद गली की बहनें इकट्ठा होती हैं। वे नित नई गत हांकती रहती हैं। 'ना, मैया ! जहां ऐसे घेरे बने रहते है, उनमें तो बालकों को अपने पैर नहीं रखने देने चाहिए।' 'पता नहीं अब मेरा यह घर कैसा हो गया है। इसमें किसी का शरीर स्वस्थ रहता ही नही है।' इस केसर वहू की नजर तो बहुत ही कड़ुई है। आज मै अपने घर में बैठी खीर खा रही थी, तभी वह अचानक आ पहुंची। बोली, 'बहन ! खीर तो बहुत अच्छी बनी है।' बस, इतना कहकर वह तो चली गई, पर उस रांड की

नजर को क्या कहा जाए ? मैं तो उलटि कर-करके हैरान हो गइ

घर मे मां-बाप अपने बच्चों से कहते है, 'देखो, इस समय गधे का नाम मत लो।' अरे आज सवेरे-सवेरे तुमने इस निपानिया गांव का नाम कहां ले लिया ! अब शाम तक तुमको रोटी नही मिलेगी।' 'सुनो रमेश ! शाम के समय उत्तर की तरफ पाव रखकर क्यों सोए हो ? उठो, खड़े हो जाओ।'

ये सब निरे अधविश्वास हैं। कोरमकोर वहम हैं। अपने आस-पास और अपने बीच रहने वाले वालकों को हम हर घडी इन वहमो का ही पान कराते रहते है। ये वहम हमको अपने माता-पिता से मिले हैं। हम इन्ही अधविश्वासों अथवा वहमों को पीढ़ी-दर-पीढ़ी, जाने-अनजाने, अपने बालको मे सींचते रहते हैं। हमने अपने माता-पिता से पूछा, 'अगर कोई साप हमारा रास्ता काटकर चला जाए तो उससे हमको नुकसान क्यों होता है ?' हमको जवाब मिला, 'तुम इसमें क्या समझो ? अपने बडे-बूढ़े जो कह गए सो यो ही नहीं कह गए !' बालक हमसे पूछता है, 'पैर हिलाने से मां क्यों मर जाती हैं ?' जवाब में हम उससे कहते हैं, 'चुप रहो। बहुत अकल मत बघारो। तुम इतना भी नही समझते कि पैर नहीं हिलाने चाहिए।'

इस सबका नतीजा यह निकला कि हम अधविश्वासी बन गए। आगे हमारे बालक भी अंधविश्वासी बनेगे और उनके बालक भी अधविश्वासी ही बनेंगे। यों, पीढ़ी-दर-पीढ़ी अंधविश्वास फैलता रहेगा।

अंधविश्वासी आदमी डरपोक होता है। 'दाहिनी आंख फडकी ! हे भगवान ! पता नहीं, अब क्या होगा ?' 'देखो यह घी फर्श पर फैल गया ! पता नही अब क्या मुसीबत खड़ी होगी ?' 'सुनो, सियार रो रहे है, कहीं आज गांव मे सेध तो नहीं न लगेगी ?' 'अगर मैं रात में दही जमाऊंगी तो कही मेरी गाय सूख तो नही न जाएगी ?' ये सारे अंधविश्वास मनुष्य के विचारों में घुल पड़े है।

मन में अंधविश्वास की बात आते ही अंधविश्वासी मन डर जाता है। किसी अमंगल की चिंता से वह कांप उठता है। भयभीत होकर पसीने

से नहा लेता है कुछ ही क्षणो की अपनी कल्पना में वह न जाने कितने दु खों का अनुभव कर लेता ह।

अंधविश्वासी वह है जो मानकर चलता है। बिना प्रमाण मांगे ही हर किसी बात को मान लेता है। अंधविश्वासी को अपने अपने अंधविश्वासो का त्याग करना चाहिए। जैसे, हम कहते है, 'याद रखो, अगर तुमने हनुमान जी को फूलों की माला नही पहनाई, तो वे तुम पर नाराज हो जाएंगे।' 'तुम भूतजी को लपसी चढाने की मन्नत नही मानोगी, तो भूतनी तुमको दुःख देगी।' मैंने अपना चूल्हा ठंडा नहीं किया था, इसलिए शीतला माता मुझ पर बहुत नाराज हो गई और मेरे बेटे को चेचक निकल आई।' अंधविश्वासी आदमी इन सब बातों को सच मानेगा और कहेगा, 'हा ये सब तो सच्ची बातें हैं।'

अंधविश्वासी मनुष्य का मतलब है, निर्मल तर्क बुद्धि को न मानने वाला आदमी। अंधविश्वासी आदमी कभी यह पूछता ही नहीं कि ऐसा क्यों होता है ? वह कभी यह कहता ही नहीं कि मैं तो यह सब तभी मानूंगा, जब मुझको इनका भरोसा हो जाएगा।

अंधविश्वासी मनुष्य यानी अशास्त्रीय मन वाला मनुष्य। वह कभी यह कहता ही नहीं कि 'आप कुछ भी क्यों न कहें, मुझको तो खुद ही इसकी छान-बीन कर लेनी होगी। जब तक बात मेरी समझ में नहीं आएगी, तब तक मैं तो तटस्थ रहना ही पसद करूंगा।' अंधविश्वासी आदमी तो बिना जांच-पड़ताल के ही जादूगर के खेलों में मंत्र-तंत्र के दर्शन करता है, जबकि अंधविश्वासों से मुक्त आदमी समझ लेता है कि ये सब तो दवा के जोर से या युक्ति-प्रयुक्ति से या हाथ की चालाकी से होने वाले काम हैं।

अंधविश्वासी मन यानी अंध श्रद्धा वाला मन। इसी कारण अधविश्वासी आदमी शास्त्र-वचन को अटल वचन मानता है। वह देवों और भूत-प्रेतो की बातो को न मानने वालों को नास्तिक समझता है और भूत-प्रेत आदि की कहानियो का सही भेद जानने से इंकार करता है।

हम लोग अधिकतर अंधविश्वासी जीवन जी रहे हैं। आजकल के

धर्म का एक बडा हिस्सा अंधविश्वास से प्रभावित है। पाखंडी लोग धर्म के नाम पर, अंधविश्वासी लोगों से अनुचित लाभ उठाते रहते है।

हमने अपने बडों-बूढो से कारण पूछे। हमको जवाब नही मिले। क्या अब हम स्वय ही अपने अनेकानेक अंधविश्वासो के कारणो को जानना चाहेगे ? भले, अपने लिए न सही, पर क्या अपने बालकों के लिए हम कारणों की खोज करेंगे ? अपने बालको के प्रश्नो के उत्तर मे क्या हम उनको कारण बताने का प्रयत्न करेंगे ?

पहले हम स्वयं इस बात का भरोसा कर ले कि सारे अधविश्वास एकदम मिथ्या है। निपानिया एक गांव हैं। रोज उसका नाम लेते रहने से हमको विश्वास हो जाएगा कि उसका नाम लेने से किसी का कोई नुकसान नहीं होता। खूसट एक पक्षी है। वह अपने लिए ही बोलता है। आंख फडकने का कारण शरीर की कोई गडबडी हो सकती है। यदि इस तरह हम अपने अधविश्वासों की छान-बीन करेंगे तो हमको अपनी नासमझी पर खुद ही हसी आएगी।

बालक हमसे बहुत-कुछ सीखते हैं, हम उनको जो बाते सिखाते है, उनकी तुलना मे हम जिस तरह अपना जीवन बिताते हैं, उससे वे बहुत अधिक सीखते हैं। मुझमें जो अंधविश्वास आज मौजूद है, वे मुझको अपने विद्यालय से नही मिले। वे तो मेरे घर से, मेरे माता-पिता के अपने अधविश्वास की शिक्षा देना चाहते हैं ? क्या हम उनको डरपोक बनाना चाहते हैं ? क्या हम उनको भोले भाव से सब कुछ सही मान लेने वाला बनाना चाहते हैं ? क्या हम उनको शास्त्रीय दृष्टि से रहित और तर्क रहित बुद्धि वाला बनाना चाहते हैं ?

यदि हमको यह सब नहीं करना है, तो हम स्वय किसी भी अधविश्वास को न मानें और न किसी को अधविश्वासी बनाएं।

●●

अमृत-दृष्टि

गुजरात के कवि कलापी ने अपनी एक कविता में एक पुराने प्रसग का मार्मिक वर्णन किया है।

एक राजा था। सैर-सपाटे के लिए निकला था। रास्ते में गन्नों का एक खेत मिला। प्यास लगी। राजा खेत पर पहुचा। किसान ने गन्ने के अमृत-से मीठे रस का एक गिलास भरकर राजा को भेट किया। राजा गिलास-भर रस गट-गट पी गया। राजा ने शीतलता का अनुभव किया। उसका कलेजा बर्फ की तरह शीतल हो उठा। राजा ने कहा, 'एक गिलास और भर दो।' किसान गन्ने में से रस निकलता ही नहीं था। बड़ी मेहनत के बाद मुश्किल से चार-पांच बूंद रस टपकता था। राजा अधीर हो उठा और किसान के पास पहुचा। राजा को देखकर किसान मन-ही-मन लज्जित हो रहा। वह गन्ने काटता रहा, पर गिलास नहीं भरा।

किसान ने कहा, 'महाराज ! बात समझ मे आ नहीं रही है। पता नही, ऐसा क्यों हो रहा है ?'

राजा बोला, भैया, इसका कारण तो मैं ही हूं। जब तुमने मुझको गन्ने का रस पिलाया, तो मैंने सोचा, ओह हो ! इस किसान के पास ऐसा अमृत है, तो यह कितना धनवान होगा ? और, कितना सुखी होगा ? इससे तो दुगुना-चौगुना कर वसूल करना ही चाहिए। मन मे इस विचार के आते ही मेरी नीति दूषित हो गई। राजा के नाते मुझ मे जो अमृत-दृष्टि होनी थी, उसमें विष घुल गया। गन्नों मे से रस न निकलने का यही कारण है।'

यह अमृत-दृष्टि एक अत्यंत महत्त्व ही वस्तु है।

वैसे खेत की फसल तो खाद-पानी से ही बढ़ती है, लेकिन जब खेत

के किनारे खडा या मचान पर बेठा किसान अपने हरे भरे खेत की हरियाली देखकर मुस्कराता रहता है, मन-ही-मन खुश होता रहता है, उमग भरे दिल से पक्षियो को उड़ाता है और खेत को पानी से सींचता है, तो वह खाद-पानी से भी बढकर अपने खेत पर अमृत से भरा दिल उंडेलता रहता है और इसमे उसकी सारी फसल पोषण पाती रहती है। अपने हाथो पाले-पोसे फूल-पौधों पर और फूलो वाली लताओं पर अपनी निगाह गडाकर खडे माली को जिन्होंने देखा होगा, वे जरूर ही यह कहेगे कि माली केवल खाद और पानी की मदद से अपने बाग को खड़ा नही करता। उसकी मीठी नजर उसके फूलों को हंसाती रहती है और उसका कोमल स्पर्श लताओं की पत्ती-पत्ती में रस का सचार करता रहता है। माली अपने फूलो को देखकर खुशी से पागल हो उठता है। अपने बाग के हर फूल को और हर कली को टूटते देखकर माली महसूस करता है, मानो उसी के जान निकल रही है, वही अंदर से टूट रहा है। जब वह किसी लता को पेड पर चढ़ाता है, तो कितनी फिकर के साथ चढ़ाता है। यही है माली की अमृत-दृष्टि। इस अमृत-दृष्टि के सहारे ही फूल खिलते है और लताएं पनपती है।

हमने देखा है कि दूध दुहते समय ग्वाला गाय का गला अपने हाथो से सहलाता रहता है। गाय चर कर आती है, चारा-चदी खाती है और दूध देती है, लेकिन जब ग्वाला 'मैया, मैया !' कहकर गाय की पीठ पर हाथ फेरता है और गाय के सींगों को खुजलाता है, तो गाय कितनी अधिक पेन्हाती है। कई लोगों को अपनी गाय कुछ खास ग्वालो से ही दुहानी पड़ती है। कहा जाता है कि गाय उनसे हिली रहती है। इसका अर्थ यह हुआ कि ग्वाले के पास एक ऐसी अमृत-दृष्टि होती है, जिसके कारण गाय अपने अमृत-जैसे दूध से अपने आंचलों को उमड़ते देती है।

जब मां अपने बच्चे को दूध पिलाने बैठती है, उस समय उसको देखने वाले ही कह सकते है कि बालक मा के दूध से पोसाता है, या मा की अमृत-दृष्टि से पोसाता है। मां के अनजाने ही मा का चिंतन शुरू हो जाता है, 'यह मेरा प्राण है। यह मेरा चेतन है। यह मेरा सर्वस्व है। अपने

दूध द्वारा मैं इसमें अपने प्राण सींचती रहती हू। यह दूध, दूध नही है, यह तो अमृत है।' यह कोई कविता नहीं है। ये तो वे अकथनीय भाव हे, जो मा के हृदय में भरे रहते हैं। मां दूध नही पिलाती। वह तो प्रेमामृत पिलाती है, जिसको पीकर मानव-शिशु जीवित रहता है और पल-पुसकर बडा होता है।

ये सब अमृत-दृष्टियां है। प्रजा राजा की अमृत-दृष्टि पाकर, बाग माली की अमृत-दृष्टि पाकर, खेत किसान की अमृत-दृष्टि पाकर ओर बालक मां की अमृत-दृष्टि पाकर पनपता और परिपुष्ट होता है।

बढने, खिलने और विकसित होने के एक अनिवार्य नियम का ही नाम है अमृत-दृष्टि। जहा-जहा यह नियम काम नहीं करता, वहा-वहा विकास की गति रुंध जाती है, सिकुड़ जाती है और उसमें शुष्कता ओर मदना आ जाती है उसमें सड़ांध शुरू हो जाती है।

अपने को और अपने बालको को ध्यान में रखकर यहा हम इस नियम पर थोड़ा विचार करें।

बालक हमारे धरों के पौधे या फूल-पौधे हैं। हमारे द्वारा तैयार किए गए वातावरण में वे खा-पीकर बडे हो रहे है। वे हमारी आंखों तले जी रहे हैं। कड़वी या मीठी, जैसी भी हमारी नजर होगी, बालक वैसे ही बनेंगे। माली अपने ही बागीचे के फूल-पौधों की क्यारियों मे दनदनाता हुआ चले, अपनी ही मर्जी के काम करे, फूलों को देखकर खुश न हो, सोचे कि हां, ठीक है, फूल खिले हैं, तो खिले रहे, तो उसको बागीचा कभी पनपेगा ही नहीं।

इसी तरह अपने बालको के बीच रहकर हम उनकी आवश्यकताओ की उपेक्षा करें, उनको भोंदू या बुद्धू मानकर जब-तब उनको दुत्कारते और फटकारते रहे, उनकी कोमल भावनाओं का कभी विचार ही न करे, उनके प्रति अभिमुख बनें। अपनी ही मस्ती में मस्त रहा करें, तो निश्चय ही इसके कारण हमारे बालक मुर्झाने लगेंगे। उनको हमारी अमृत-दृष्टि का पोषण नहीं मिल पाएगा।

बालक बहुत ही नाजुक और नन्हे होते हैं, किंतु इसी के साथ वे

बहुत ही संवेदनशील और संस्कार-क्षम भी होते हैं। वे हमारी राजी-नाराजी को हमारे गुस्से को और हमारी खुशी को फौरन ही पहचान लेते है। हमको कठोर पाकर वे अपना मन मूद लेते है और हमको प्रसन्न देखकर वे भी प्रसन्न हो उठते है।

जिस घर मे माता-पिता दोनो अपने अधिकार के जोर से सबके साथ व्यवहार करते हैं और जहा बालको को भी ऐसे ही व्यवहार का शिकार बनना पडता है, वहा बालक अपने माता-पिता की अमृत-दृष्टि से वचित रहते है।

जिस घर मे बालक निरे नन्हे-मुन्ने माने जाते हैं, जहा उनको किसी प्रकार का कोई मान-सम्मान दिया ही नही जाता, जहा वे ऐसे सम्मान के लायक माने ही नही जाते, जहां वे गिरते-पडते और भटकते-टकराते हुए ही बडे होने वाले समझे जाते है, उस घर के बालक भी अपने माता-पिता की अमृत-दृष्टि से वचित रहते हैं।

जिस घर में बालको की तरफ प्यार से देखा ही नहीं जाता, जहा उनके छोटे-छोटे कामो की, उनकी छोटी-छोटी बातो की और उनकी सहज और सरल सद्भावनाओ की कोई कीमत और कदर नही होती, बल्कि जहा उनके इन कामो की उपेक्षा ही की जाती है और इनके प्रति घर के बडों की अरुचि ही प्रकट होती रहती है, उस घर में बालकों के प्रति अमृत-दृष्टि नही, बल्कि विष-दृष्टि ही अपना काम करती रहती है।

जिस घर मे बालको को आयाओं के स्वार्थ-सने वातावरण में और दूसरी तरह के गदे वातावरण में रहना पडता है, वहा बालकों की अमृत-दृष्टि के खाद-पानी के बदले दूसरे ही प्रकार का खाद-पानी मिलता है।

जिस घर मे बालको को माता-पिताओं की स्वार्थ-वृत्ति, द्वेष-वृत्ति, वैर-वृत्ति और लोभ-वृत्ति आदि क्षुद्र प्रकार की वृत्तियों के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष वातावरण मे रहना पड़ता है, वहां बालक अमृत के बीच नहीं, बल्कि हलाहल विष के बीच ही पलते-पुसते हैं।

जहां बालक माता-पिता के आपसी कलहो में, सगे-संबंधियो की

निदा ओर कुत्सा मे ओर जात पात के दाव भरे पेच प्रसगो म रुचि लेने लगते है, वहा वे अमृत का नहीं, निरे विप का ही पान करते रहते है।

बालक हमारे घरो में वढने वाले पौधे है। जिस तरह पौधो पर हवा का और सूरज के प्रकाश का भला-बुरा प्रभाव पडता रहता है, उसी तरह बालकों पर उनके माता-पिताओं का और दूसरे लोगों का भी भला-बुरा प्रभाव पडता ही है। यह प्रभाव अमृत के समान भी होता है और विष के समान भी होता है।

जब हम इस बात को लेकर चिंतित होते है कि शरीर की, मन की ओर रीति-नीति की दृष्टि से हमारे बालक का विकास ठीक तरह से क्यो नहीं हो रहा है, उल्टे, वह मद और निस्तेज क्यो बनता जा रहा है, उसमे विस्मरण की और प्रमाद की मात्रा क्यो बढ़ रही है, तो हमको अपने से ही पूछना चाहिए कि इसका कारण रोज-रोज की हमारी अपनी रोक-टोक तो नहीं न है ? बालक को काम मे लगा देखकर हमने अपनी प्रसन्नता व्यक्त नहीं की। हमारी यह उपेक्षा ही तो इसके मूल में नहीं न है ? हमारी अपनी सहानुभूति का अभाव ही तो इसका कारण नहीं न है ? वे सब अमृत-दृष्टि के अभाव के लक्षण हैं।

अमृत की दृष्टि और विप की दृष्टि स्थूल और सूक्ष्म दोनों प्रकार की होती है। बालक को हम प्रसन्नतापूर्वक अपने पास बुलाए और उसकी बात का जवाब दे, तो यह हमारी स्थूल दृष्टि हुई। बालक को काम करते देखकर हम नेह-पूर्वक उसकी ओर निहारें और मन ही मन प्रसन्नता का अनुभव करें, चाहे बालक को इसका पता भी न चले, तो वह उसके प्रति हमारी सूक्ष्म दृष्टि होगी। बालक हमसे इनाम नहीं चाहता, वह तो चाहता है कि उसके काम को देखकर हम खुश हो। बालक हमसे यह नहीं कहता कि हम उसके कामों को देखें और उसके के पास बैठे रहे। बालक हमारी उपेक्षा नहीं, अभिमुखता चाहता है। वह जब भी हमारे पास आए, हम उसका स्वागत करें। हम शांत और सरलभाव से. स्नेहपूर्वक, उसके प्रश्नो के उत्तर दें। हम उसकी कठिनाइयों को दूर करें, या उनको दूर करने में उसकी मदद करें।

विप की स्थूल दृष्टि का मतलब यह है कि हम बालक को उसके प्रयत्नों के लिए झिडकते रहें। उसको मूर्ख समझकर उसकी हंसी उडाते रहें, आदि-आदि। दूसरी तरफ, भले ही एक बालक से कोई तीखी बात न कहे, लेकिन अगर बालक को हमारी आखे निस्तेज लगती है, हमारा चेहरा उसको भाव-शून्य लगता है, हमारी बातें उसको रूखी-सूखी लगती है, हमारे व्यवहार उसको अटपटा-सा मालूम होता है, हमारी रीति-नीति उसको उलझन-भरी और अनादर-सूचक लगती है, तो बालक के लिए ये सारी बातें दुखदायक बन जाती है। बालक के साथ इस तरह का व्यवहार हम उसी हालत में करते है, जब हमारी दृष्टि बदल जाती है, यानी जब दृष्टि अमृत की न रहकर विष की बन जाती है।

दृष्टि के इस भेद को बालक तुरंत ही पहचान लेते हैं। पडोसिन बहन ने बालक को किस निगाह से देखा, अथवा छोटे चाचाजी ने बड़ी बुआजी के बेटे पर कैसी दृष्टि डाली, इस चीज को बालक सहज ही पकड़ सकते हैं और अपने मा-बाप को वे इसकी जानकारी भी दे सकते हैं। हम सबको इसका अनुभव है ही।

आइए, हम अपने बालकों का लालन-पालन अमृत-दृष्टि से करें और अपने बालको के जीवन को सरस और सुमधुर बनाने के लिए अपने आसपास से, अपने घरों से और अपने पास-पडोस से कडवी दृष्टि को खदेड़कर अपने चारों तरफ अमृत-दृष्टि का ही विकास और विस्तार करने में लगे रहें। हम दोनों का, यानी हमारा और हमारे बालकों का कल्याण इसी में समाया हुआ है।

●●

यह तो गंवार है, गंवार !

'वेटे तुम खाना के लिए उठोगे या नहीं ? यह खाना ठंडा हुआ जा रहा है। मैं तुमको कब मे पुकार रही हू। तुम उठते क्यों नहीं हो ?'

'अम्माजी ! वस, मै उठ ही रहा हूं। यह आखिरी गड्ढा और खोद लेता हूं।'

'वेटे ! तुम्हारा गड्ढा जाए गड्ढे में । मै पूछती हूं कि तुम अब खाने के लिए उठते हो या नहीं ? इस चौके में मै कब तक बैठी रहू ?'

'अम्माजी ! बस, मुझको आया ही समझो। यह गड्ढा तो अव खुद ही चुका है।'

'वेटे ! तुम उठते हो या नहीं ? तुम न उठे, तो अपने इन रसोई वाले हाथो से ही मैं तुमको तड़ातड़ पीट डालूगी। मक्कार कहीं के ! पुकार-पुकारकर मेरी जीभ थक गई, पर एक तुम हो कि मेरी पुकार पर ध्यान देते ही नहीं हो !'

'अम्मा जी ! बस, हाथ धोकर आ ही रहा हूं।'

'हाय राम, अपने इस अभागे गंवार को मैं कैसे समझाऊं ?'

☼

'आज इस छगन को छडी से पीटिए।'

'आखिर बात क्या है ? सुनो छगन ! इधर आओ।'

'इसकी पिटाई तो होनी ही चाहिए। इसको दो छड़ी जोर से मारिए। बिना मार खाए यह मेरी सुनेगा ही नही।'

'लेकिन यह तो वताओ कि मामला क्या है ?'

'यह बिल्कुल गंवार बन गया है।'

अच्छा पहले मेर लिए पानी लाओ मुझको प्यास लगी है अपनी यह पगड़ी तो मुझे उतारने दो !'

'नहीं, पगड़ी बाद में उतारिए। पहले इस छगन की मरम्मत कीजिए। देखते नहीं हैं, कैसा गाय की तरह और भीगी बिल्ली की तरह सहमकर खडा है !'

'छगन ! कहो, तुमने क्या कर डाला ?'

'पिताजी ! मैंने तो कुछ भी नहीं किया। अपने संग्रह की कौडिया गाड़ने की लिए मै उधर आंगन में एक गड्ढा खोद रहा था। तभी अम्माजी ने कहा, 'झट आ जाओ और खाना खा लो। खाना ठंडा हो रहा है। मैं बोला, 'बस यह गड्ढा खोदकर आ ही रहा हू। इस पर अम्माजी गुस्सा हो उठीं !'

'तुमको जरा रुक जाना था। आखिर देर कितनी होती ?'

'भला, मैं रसोईघर में कब तक बैठी रहती ? आप इस गर्मी में चूल्हे के पास बैठकर देखेंगे, तो आपको मेरी तकलीफ का पता चल सकेगा !'

'कुछ देर के लिए खाना ढककर रख देना था। यह अपने आप खा लेता।'

'पर खाना बिल्कुल ठडा जो हो जाता !'

छगन ने कहा, 'लेकिन मुझको गर्म खाना पसंद ही कहां है ?'

'आप सुन रहे हैं न ? यह कैसी मुहजोरी कर रहा है ? अब तो आप इसको चार छड़ी तडातड़ जमा दी दीजिए।'

❋

मां ने अपने बेटे की हाजिरी में उसकी शिकायत न की होती, तो काम चल सकता था। अपने खिलाफ शिकायत और उलाहने सुनकर कौन बालक है, जिसका दिल दुखता न हो ? कार्यालय से थककर आए अपने बेटे के बाप से कुछ देर बाद शिकायत की होती, तो क्या वह बेहतर न होता ? जिसको हमने गंवार मान लिया है, क्या हमारा वह बेटा छड़ी की मार खा लेने भर से चतुर बन जाएगा ? मां अपने बेटे के लिए खाना

ढककर रसोईघर से बाहर आ जाती, तो क्या उससे उसका काम न बनता ? बाद में बेटे को अपने पास बैठाकर मां उसको प्यार के साथ समझा सकती थी कि 'बेटे ! अपना खाना तो सुबह-शाम समय पर ही निपट जाना चाहिए। कोई पहले खाए और कोई बाद में खाए या देर में आकर खाए, तो सारा दिन खाने की व्यवस्था मे ही बीत जाता है और दूसरे कामों के लिए समय ही नहीं बचता।'

अग्रेजी में एक कहावत है कि 'औंस-भर समझाइश सेर-भर के बराबर होती है।'

●●

प्रकृति का परिचय

प्रकृति का परिचय शाला मे नहीं, वरना शाला से बाहर दिया जाना चाहिए। आज प्रकृति का परिचय शाला में दिया जा रहा है, यह स्थिति शोचनीय है पशुओं और पक्षियों की बातें कविता में या किताबों के पाठो मे समाप्त हो जाती हैं। पढ़ने वाले छात्र प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण मे उडने वाले पक्षियों में से कौवों-चिड़ियों को छोड़कर दूसरो को शायद ही जानते-पहचानते होंगे। पक्षी-जगत की तरफ तो उनका ध्यान जाता भी नहीं। तारों के पाठ ज्यादा—से—ज्यादा परीक्षा पूरी होने के साथ ही पूरे हो जाते हैं। घर के बाड़े में सोए-सोए शाम से सुबह तक सिर पर दिखाई देने वाले अनेक तारों में से किसी एक की भी विद्यार्थी को जानकारी नही होती। जंगल के पशुओं की बातें और उसकी आदतो के बारे में शायद बालकों को कुछ याददास्त हो, पर शायद ही उनमें से किसी को उन्होंने जगल में या जतुआलय मे देखा होगा। दो-चार फलो के सिवाय बाग के या जंगल के सैंकड़ों फूलों से बच्चे केवल अनजान होते हैं। जंतु-सृष्टि की तो कदाचित उन्हें जानकारी अत्यंत अल्प मात्रा में होती है। प्रकृति और मनुष्य दोनों अलग नहीं हैं। दोनों उस एक ही सिरजनहार की अलौकिक सृष्टि है। मनुष्य ने आज तक प्रकृति के बीच रह कर, प्रकृति की सेवा करके, प्रकृति से प्राण प्राप्त करके अपनी प्रगति की है। प्रकृति ने मनुष्य को काव्य की कल्पना दी है, शारीरिक बल के पोषक तत्त्वो की प्रतिपल भेट दी है तथा सुख के अनेक साधन उदारतापूर्व उपलब्ध कराए है। ऐसी उदार प्रकृति से हम निरंतर दूर जाते जा रहे हैं, किताबी पढ़ाई से यह दूरी और अधिक बढ़ती जा रही है। समझदार लोग प्रकृति का ज्ञान देने के लिए किताबों में पाठ रखते हैं और पढ़ने वालों को प्रकृति से विमुख बनाने

की गलती कर रहे ह वस्तुत प्रकृति का लाभ लेने के लिए हमे प्रकृति के पास जाना चाहिए, प्राणवान प्रकृति के पास बैठना चाहिए, उसकी सेवा करनी चाहिए।

बालक को ठेठ बाल्यावस्था से ही प्रकृति के परिचय में लाने की व्यवस्था होनी चाहिए। खुशनुमा हवा मे आंगन मे लेटे बालक को मौसम का मंद-मधुर अनुभव होता है। पलने मे लेटे-लेटे ऊपर अधर आकाश को देखते-देखते बालक अनंत आकाश का दर्शन करता है। तभी तो वृक्षों के पत्तों की खड़खड़ाहट, पवन की सरसराहट या पक्षियों की चहचहाहट बालक के कान को आनंद देती है। कोमल धूप, झीनी-झीनी उषा-सध्या, गुलाबी ठंडक आदि प्रकृति के तमाम बल बालक को पोषण करते हैं। पच तत्त्व द्वारा उत्पन्न यह देह पंच तत्त्वो से ही निरंतर पोषित होती है तथा बढ़ती है। प्रकृति के प्रांगण में निवास करने वाले आदिवासी लोगों के बच्चो को यह लाभ प्रतिदिन स्वाभाविक रूप से मिलता है। शहर मे यह लाभ मिलना बंद हो गया है। इसका बदला किताबो के पाठों से नहीं मिल सकता।

जिस प्रकार प्रकृति स्वाभाविक है उसी प्रकार इसका परिचय भी स्वाभाविक होना चाहिए। पिंजड़ों में बंद पक्षियों या पशुओं का अध्ययन प्रकृति का परिचय नहीं है। किताबों में खिंचे हुए आकाश के नक्शे प्रकृति के परिचायक नहीं हैं। बाड़े में पड़े पत्थरो की ढेरी के पहाड़ बनाकर तथा घर के मटके का पानी गिराकर उसकी बगल में बनाई गई नाली से पर्वत एव नदी का परिचय नही दिया जा सकता। प्रकृति-परिचय के लिए बालक को और विद्यार्थियो को शहर के बंद कैदखाने से विशाल धरती पर, दो हाथ पहुंचे जितनी दृष्टि मर्यादा में से नजर न पहुंचे जितनी दूर वाले क्षितिज के सामने, मिलों-कारखानों के शोरगुल से मधुर-कंठ वाले पक्षियों के बीच, लकड़ी पर बैठे गधों और पानी की पखाल खींचते पाडो से छलांग मारकर चौकड़ी भरते हरिणों के पास, नाबदान और गंदगी की ढेरी के पास से खिलखिलाती बहती नदियों और गगन चुंबी पहाड़ों-पहाड़ियो के पास ले जाना चाहिए। वहां उन्हें प्रकृति के सौंदर्य का पान करने के

लिए खुला छोड देना चाहिए।

विद्यार्थियों के साथ शिक्षक जाए और कदम-कदम पर उन्हें इधर देखो, उधर देखो कहते हुए उनके दिमाग में प्रकृति का ज्ञान ठूंसते है तो यह शिक्षण नहीं कहा जाएगा। प्रकृति का ज्ञान चाहे किताबो में हो या भले ही शिक्षक के शब्दों मे हो, प्रकृति का परिचय तो प्रत्यक्ष ही होना चाहिए। शिक्षक के शब्द और किताबें तो एक तरह से विपर्यय-रूपी है। हरी-भरी जमीन पर पड़े-पडे जब विद्यार्थी वसंत की कोमल धूप में तपते है तो उन्हे प्रकृति का परिचय मिलता है। पेड़ों के नीचे बैठकर जब बालक 'वह कोयल बोली, वह बुलबुल बोली, वह टुक-टुक बोलता है,' यों कहते हुए एक-एक पेड और डाली-डाली पर जब पक्षियों की तलाश करते हे, उन्हें देखते है तब प्रकृति का परिचय होता है। कल-कल बहती नदियो मे जब बालक जी भर कर नहाते हैं और बार-बार विश्राम लेते हुए पहाडो पर चढ़कर धरती का सौंदर्य निहारते हैं, तो ऐसे बालक ही प्रकृति का परिचय साध सकते हैं। अंधेरी रात में तारों को देखते-देखते मैदान मे कब नींद आ गई, इसका पता लगे बिना ही सो जाने वाले बालक आकाश के परिचय का आनद लेते हैं। संक्षेप में, प्रकृति में उन्मुक्त भाव से विचरण करते, खेलते विद्यार्थियों को ही प्रकृति का सच्चा परिचय हो पाता है। घटों तलक समुद्र की लहरों को पैरों से टकरा कर जिन विद्यार्थियो ने वापस लौटने का अनुभव किया है, ज्वार-भाटा देखकर जिन विद्यार्थियों ने सागर की लहरो को जाना है, भाटा आने के बाद ही रेत में जिन छात्रो ने लकड़ी के टुकडे से नए-नए चित्र बनाए हैं, उन्होंने कितनी ही पाठ्य पुस्तको में भरा हुआ ज्ञान प्राप्त कर लिया है। अर्थात प्रकृति का ज्ञान जिस स्थान पर पड़ा है, वहां जाने वालो को वह खुले रूप में बिना मूल्य उपलब्ध होता है, जबकि किताबों मे भरा ज्ञान बद है, किताब की कीमत देने पर ही उपलब्ध है और वह भी तोता-रटत वाला ज्ञान है।

प्रत्येक घर और शिक्षण सस्था के सामने प्रकृति-परिचय का विषय रहना चाहिए। इसका अभ्यासक्रम आज के अभ्यासक्रम जैसा सख्त बेडी रूपी नहीं अपितु दिशा सूचक होना चाहिए। प्रकृति परिचय में निम्न बातो

का समावेश किया जाता सकता है—

1. पशु-पक्षियो तथा जतुओ का परिचय, पक्षियों का अध्ययन।

2. पेड-पौधो का सामान्य ज्ञान और अध्ययन।

3.नदी, खड्डो, पर्वतों एवें झरनो का सामान्य परिचय तथा अध्ययन।

4. तारों का परिचय व अध्ययन।

5. खेतों, सागर किनारों, मैदानों, जंगलों आदि का परिचय तथा अध्ययन।

परिचय को अध्ययन से अलग रखा जा सकता है। खुली आखो और खुली इंद्रियों से घूमने-फिरने वाले विद्यार्थी परिचय प्राप्त कर सकते हैं। परिचय प्रचुर भ्रमण से प्राप्त होता है। जिनकी इंद्रियां विकसित नही है।, वे घूमने पर भी, कुछ देख नहीं सकते। अनुभव नही कर सकते। रग-बिरंगी नीलकंठ उनकी आखो के सामने से गुजर जाती है, फिर भी उवकी आंखें उनके रंगो को नही पकड़ पातीं। हरिण उनके पास से चौकडी भरते निकल जाते हैं फिर भी उनकी दौड या उनकी छलांग उनकी आखो को मजा नहीं दे पाती। समुद्री हवा, पहाड़ी हवा या जंगल की हवा का फर्क उनकी त्वचा को महसूस ही नही होता। पृथ्वी, फूल आदि गंध वाले पदार्थ उनकी नाक तक आकर लौट जाते हैं। इद्रिय-शिक्षण प्रकृति परिचय और अध्ययन के लिए अत्यावश्यक वस्तु है और इसका प्रबध प्रकृति-शिक्षण देने के इच्छुक माता-पिता और विद्यालयों को सबसे पहले करना चाहिए। इंद्रिय-शिक्षण से विहीन विद्यार्थी बड़ी उम्र में जब प्रवास पर जतो हैं या स्काउटिंग में जाते हैं तो उन्हें बहुत कम ज्ञान प्राप्त होता है, उतना कुछ प्रात करने में भी उनको मेहनत पड़ती है। प्रकृति का ज्ञान सहज रूप में इंद्रियों को प्राप्त करने में भी उनको मेहनत पड़ती है। प्रकृति का ज्ञान सहज रूप मे इंद्रियों को प्राप्त नहीं होता। उस समय उन्हें इद्रियों के शिक्षण का काम साथ-साथ करना पड़ता है। आनंद की दृष्टि से बहुत कम आनंद इस तरह के विद्यार्थी प्रकृति-परिचय द्वारा प्राप्त कर सकते हे,

विद्यार्थियों को प्रवास कर ले जाने वालें का अनुभव होगा कि विद्यार्थी भ्रमण द्वारा नई-नई चीजें ढुंढने का आनंद लेने के बजाय या तो

बेकार की दोड़ाभागी करते हे अथवा आवास स्थल पर पडे पड धीगा-मस्ती करत ह आर यह नही करत ता ताश खेलने मे अपना समय व्यतीत करते हे। जिन छात्रो का इंद्रिय-शिक्षण नहीं हुआ हो, उन्हें प्रवास पर ले जाने से पहले प्रकृति के आंचल में क्या कुछ देखना चाहिए, इस बारे मे व्याख्यान द्वारा जानकारी देनी चाहिए तथा प्रकृति संवधी चित्रों से उनकी बुद्धि को सतेज करनी चाहिए। इसके विपरीत जिन छात्रों की इंद्रिया सस्कारित होती हैं उनको लेकर घूमना ही काफी होता है। प्रकृति खुद-ब-खुद उनको अपनी बाते कहने लगेंगी तथा शिक्षक अथवा घुमाने वाला व्यक्ति जितना उनसे दूर रहेगा, उतनी ही वे प्रकृति की बातें ज्यादा सुनेंगे।

घूमने के साधनों की गणना करे तो रेल, मोटर, घोड़ागाडी, साइकिल, गाड़ी, तथा पैर—इतने सारे साधन हैं। जब-जब भी विद्यार्थियो को समय हो, तो उन्हे पैरों से चलकर प्रवास करना चाहिए, वही सर्वोत्तम होता है। इससे प्रत्येक बातो का जो प्रत्यक्ष अनुभव होता है, वह दूसरी तरह से नही होता। पैरों द्वारा यात्रा करने मे जब जहां अच्छा लगे तब वहां रुककर कम या अधिक समय तक अवलोकन किया जा सकता है। पैरो की यात्रा में विद्यार्थियो का और रीति से भी निर्माण होता है। स्काउटिंग मे ज्यादातर चलना ही होता है और इसमें बड़ा गहरा रहस्य है। दूसरे नंबर पर गाडे की यात्रा है और आखिरी नंबर पर रेलगाड़ी की यात्रा है। फिर भी दूर-दूर के स्थानो की रेलगाड़ी से पहुंचे बिना प्रकृति की भव्य सृष्टि तक पहुंचा भी नहीं जा सकता। वहां तक तो इस युग के द्रुतगामी साधनों की ही जरूरत पड़ती है। आज के जमाने में समय बचाने के लिए भी ये यांत्रिक साधन जहां हमारा हेतु सिद्ध कर सकते हैं वही उपयोग मे लाने लायक भी हैं। पर आज के यात्रीगण रेल में बैठकर पूरा हिंदुस्तान घूमकर घर लौटते हैं। वैसे विद्यार्थी घर आने के बजाय रेल के डिब्बो मे स्टेशन पर ही बैठे रहें तो बुरा क्या है। द्रुत गति से भागने वाले साधन प्रकृति की विशालता और विविधता को थोडे समय में ही बता सकते है। जिनका प्रकृति से अनुराग बढ़ा गया है, जो अपनी चंचल इंद्रियों के द्वारा

प्रकृति के सौंदर्य का आस्वादन कर सकते हैं, ऐसे बड़े विद्यार्थियो का मोटर या साइकिल के द्वारा घूमना लाभदायी रहता है। प्रकृति-परिचय के लिए रेल के बजाय मोटर का प्रवास ज्यादा अनुकूल सिद्ध होता है। रेल तो हमे एक निश्चित स्थान तक पहुंच सकेंगे। फिर भी प्रकृति के गहन परिचय तथा अध्ययन के लिए कहीं-न-कहीं स्थाई पड़ाव डालकर अमुक समय तक रहना ही चाहिए। ऊपर कहा गया है कि शिक्षक और माता-पिता को प्राकृतिक स्थान देखकर बैठ नहीं जाना चाहिए, अपितु बालकों को प्रकृति में विचरण करने देना चाहिए। ग्रहणशील इद्रियों वाले बालक प्रकृति को समझने लगेंगे। उनकी सहायता के लिए साथ जाने वाले प्रकृति-प्रेमी हो, यह जरूरी है। कोई साथ न हो, तो मात्र प्रवास की व्यवस्था करने वाले प्रकृति-अरसिक लोग नुकसान कर बैठते हैं। प्रकृति प्रेमी साथी अपने ढंग से प्रकृति का अवलोकन करते हैं, देखते-देखते स्वतः कुछ उद्‌गार भी व्यस्त करते हैं, घर लौटकर आराम करते समय या खाना खाते समय प्रकृति के संबंध में जब वे प्रस्तावनापरक बातें करते है तो विद्यार्थियों को प्रकृति के अवलोकन की नूतन दृष्टि मिलती है तथा नए-नए क्षेत्र उघड़ते हैं। प्रकृति के बारे में भाषण या व्याख्यान के बजाय ऐसी प्रस्तावनापरक मुक्त बाते बहुत उपयोगी होती हैं। प्रकृति-परिचय का विषय बालकों के समक्ष प्रत्यक्ष रूप से न आए वरना वह अप्रत्यक्ष ही रहे। इसका यह अर्थ है कि बालकों को स्वयं प्रकृति का अवलोकन करना है, ऐसा ध्यान उनके मन मे बार-बार बना रहे। विद्यार्थियो को ऐसा ध्यान दिलाने की जरूरत नहीं है। कुदरत के बीच उन्हें छोड़ दे, जिस तरह हवा मे श्वासोच्छ्वास चलती है, वैसे ही उन्हें स्वतः प्रकृति-परिचय होता रहेगा।

प्रकृति-परिचय से ओतप्रोत हुए विद्यार्थियो के निमित्त प्रकृति का अध्ययन खुल्ला हो जाता है। ऐसे मसय प्रकृति का अध्ययन करने वाले किसी साथी की जरूरत पड़ती है। 'देखो, ये यहां हरिण के पैर गए है, ये सियार के हैं और वे तीतन के।' यो बताने वाले के वगैर प्रकृति के प्रत्येक नए दर्शन के समय विद्यार्थी का ध्यान आकृष्ट करेगा। 'यह

घोसला बया का है। देखो, किस तरह बनाया है ? कितना ऊंचा है ? कैसे पदार्थ अंदर रखे हैं ? कैसे वृक्ष पर है ? कितने अंडे है उसके ? किस रग के हैं ? यह सागर तट की रेत कहां से आई है, ये चट्टानें पानी के कारण किस तरह घिस गई हैं ? यह जमीन नदी के मुह के सामने किस तरह भरती जा रही है ?' 'यह अशोक का पत्ता आम के पत्ते से किस तरह अलग है ?' और 'यह चंदन का पत्ता बोरड़ी के साथ किस तरह मेल खता है ?' देखो, शाम के समय पर्वन के ऊपर कैसे रग दिख रहे थे और सागर तट पर खड़े-खड़े कैसे दिख रहे हैं ?' यो कहते हुए प्रकृति का अध्ययन जीवत बना देने वाला व्यक्ति प्रवास में हमारे साथ होना चाहिए। ऐसे व्यक्ति के बगैर प्रवास बेकार जाता है।

प्रकृति का अध्ययन दृढ़ करने का साधन है प्रकृति का परिचय सगृहीत करना। प्रकृति का अनुपम सौंदर्य या प्रकृति का प्रभाव की महत्ता या प्रकृति का दिव्य दर्शन तो मनुष्य अपने हृदय मे भर लेता है, नोट-बुक के पन्नों में या संग्रहस्थल पर उसे लाया नहीं जा सकता। पर कितनी ही स्थूल चीजो को संगृहित कियसा जा सकता है और उनका संग्रह करना चाहिए। पक्षियों के नीचे गिरे हुए पख, खाली अडे ? पत्ते, फूल, शख, सीपियां, पत्थर आदि नन्ही-नहीं प्राकृतिक संपदा को सगृहीत किया जा सकता हैं। प्रकृति का संग्रहालय प्रत्येक घर में होना चाहिए। प्रत्येक विद्यालय के लिए तो वह अनिवार्य ही है। प्रकृति में घूम आने वाले विद्यार्थी उस संग्रह को देखकर अपनी स्मृति ताजा करेंगे तथा अपनी वेज्ञानिक दृष्टि का अध्ययन व्यापक बनाएंगे। प्रकृति संवधी अध्ययन को पुप्ट करने के लिए प्रकृति विपयक पुस्तकों एवं चित्रों का अवलोकन एक ओर साधन है। प्रकृति के अध्ययन के लिए प्रथम प्रकृति-परिचय ओर तदोपरात पुस्नक-वाचन महत्त्व रखता है। प्रकृति का चित्र-दर्शन प्रकृति-परिचय कुरेदने की दृप्टि से मददगार है, अत उसका स्थान प्रकृति के अध्ययन मे पहले भी है और बाद मे भी। प्रकृति का अध्ययन अन्य विपयों की भाति पढ़ाकर कराने की बजाय जो बालक प्रकृति के बीच घूम आए है, उन्हे उससे संबंधित किताबें देकर वाचन कराया जा सकता है। जिस तरह

विद्यार्थी स्वेच्छा से भ्रमण करते ह तथा प्रक1ति का अवलोकन करत ह वसे हा उन्हे स्वेच्दया पुस्तको द्वारा प्रकृति का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए

प्रकृति के अध्ययन का एक पक्ष 'ऐसा किसलिए ?' अथवा 'एसा क्यों ?' अर्थात वौद्धिक जिज्ञासा के प्रदेश का है। प्रकृति के इस पक्ष का अध्ययन शिक्षक के व्याख्यान द्वारा क्रमिक अभ्यासक्रम या क्रमिक वचन द्वारा हो सकता है। तर्क-शुद्ध रीति से वस्तु को समझाने वाला शिक्षक प्रकृति के रहस्यों को समझाने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करता है। ऐसा शिक्षक वैज्ञानिक अभिवृत्ति का होना चाहिए। वह प्राकृतिक घटनाओ के पीछे निहित कारणों को रटाने वाला नहीं हो अपितु प्रत्यक्ष कराने वाला होना चाहिए। इसी भाति शिक्षक का स्थान भरने वाली सरल, केवल वैज्ञानिक दृष्टि वाली तथा काव्यमय शैली में लिखी विवरणात्मक पुस्तके भी प्रकृति के अध्ययन में मददगार हो सकती है। इसी तरह हमारे घरो और विद्यालयों को प्रकृति का परिचय एवं अध्ययन संभव कराना चाहिए। कल नही, आज से ही हमें इसकी शुरुआत करनी है।

2

यह अच्छी बात है कि अध्यापकगण विद्यार्थियो को शाला से बाहर भ्रमण के लिए ले जाते हैं। शाला की कैद से छूटकर नाचते-कूदते विद्यार्थियों को देखने में मजा आता है। उनको जरा-सी मुक्ति मिलते ही, उससे उनका दिल किस कदर खिल उठता है वे विद्यालय व शिक्षक के प्रति और ज्यादा प्रेमिल एवं अभिमुख बन जाते है।

बाहर निकलने वाले बालकों को शिक्षक क्या कुछ बताएगा ? क्या-क्या सिखाएगा।

जगल में घुमाने ले जाकर विद्यार्थियो को वहां क्या कुछ बताया जाना चाहिए। शिक्षक उनको पशु, पक्षी, और वनस्पति-सृष्टि के परिचय मे ला सकता है। खेल-खेल में।

एक तो तरह-तरह के पक्षियों से पहचान कराए। उनके रंग, पख, अंडे, घोंसले, उडने का तरीका, गाने या चहचहाने की रीति विद्यार्थियों को

बताए और इनमे बालक को आनद लेने की प्ररणा दी पक्षिया के परिचय की एक वार शुरुआत होते ही बच्चे अपने आप रुचि लेने लगेंगे। बच्चों को नए देखे हुए पक्षियों के नाम लिखने और उनसे सबधित जानकारी के लिए नोट बुक रखने हेतु प्रेरित किया जाए।

इसी भांति बालकों को वन के पशुओ की जानकारी के मार्ग पर ले जाया जाय। जगल में विद्यार्थियों को रास्ते की तलाश बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसके लिए उनको पशुओं के पैरों के निशानों की पहचान कराई जाए। ये गाय के पैर, ये हरिण के इत्यादि। उस रास्ते से कौन जानवर गया है यह दिखाना। आदमी के पैरों के निशान ढूंढ़ना भी सिखाना चाहिए अर्थात कोई आदमी किसी रास्ते गया हो तो उसके खोज ढूंढ़ते-ढूढ़ते उसका पता कैसे लगाया जाए, यह बताना। एक टुकडी एक तरफ गई हो तो उसके पीछे आने वाली टुकड़ी के लिए चिह्न कैसे लगाए जाए, रास्ते की दिशाए कैसे बताई जाए, यह शिक्षक बता सकता है। विद्यार्थी अमुक स्थान से अलग होकर वापस अमुक स्थान पर पहुचे, इसके लिए अमुक स्पष्ट निशानों को पहचानना सीखना, भ्रमण के लिए जाते विद्यार्थियों को यह शिक्षण भी भली-भांति दिया जा सकता है।

बालकों को जगल में ले जाकर वहां की वनस्पति और वनश्री का दर्शन कराना चाहिए। उन्हें तरह-तरह के पेड़ों के नाम बताए जाएं। उनके पत्ते इकट्ठे करके उसको पहचानने का खेल खेला जा सकता है। उनके फल मिलें तो स्वाद लिया जा सकता है। जंगल में जाकर पेड़ों पर चढने, झूलने और खेलने का मजा तो हर्गिज न चूका जाए।

जब विद्यार्थी को दिखाए पहचानने की अलग-अलग विधियां बताई जाए ! ध्रुव-कांटें का उपयोग, सूर्य चंद्र व तारों द्वारा दिशा का ज्ञान कराया जाना चाहिए।

जब विद्यार्थी वन में फिरते हैं तो उन्मुक्त पक्षियों की भाति विचरण करते हैं। उनकी जिज्ञासा और खोज वृत्ति को पर्याप्त छूट मिलती है। उन पर अनुशासन या नियमन के आदेश नहीं लगाने चाहिए। उनको बार-बार ऐसा न कहें कि इधर चलो या उधर चलो। उनको खुला छोड़ दें, 'जाओ

और देखो क्या देखते हो क्या सुनते हो ? क्या छूते हो ? क्या जानते हो ? अपने अवलोकनों से अपनी डायरी भर लाओ। चित्रों से अपनी स्केच-बुक चित्रित कर लाओ। अपनी जेबों मे सग्रहणीय नई-नई चीजें भर लाओ।' शिक्षकों को ऐसी प्रेरणादायी बातें कहकर विद्यार्थियों को रवाना करना चाहिए।

प्रकृति के परिचय मे आने से विद्यार्थियों को रोकें नही। उनको नदियों के जल में नहाने दो, पहाड़ों पर चढ़ने दो। उनके भीतर विद्यमान साहसिक वृत्ति को बाहर निकालने के लिए उनके सामने अनेक क्षेत्र खुले छोडे जाए।

प्राचीन मंदिर, खडहर, बावड़ी, कुएं आदि स्थल विद्यार्थियो को जरूर वताएं। उनको देखने से उनके भीतर खोजबीन करने का शौक पैदा होगा। उन स्थलों पर खड़े होकर वहां से संबंधित ऐतिहासिक बातें उन्हे बताई जाएं। इससे विद्यार्थियो की दृष्टि और ज्यादा ऐतिहासिक बनेगी।

जंगलो में घूमते-घूमते अगर किसी रात वहा रहने का कार्यक्रम बनाया जाए तो उससे विद्यार्थियों को और अधिक समृद्ध बनाने का अवसर मिल सकता है। घूमते-भटकते थके हुए विद्यार्थियां को विविध भांति की सरस कहानियां कहनी चाहिए; चांदनी में खेल खेलाए जा सकते हैं, वार्तालाप और विनोद का आनंद लिया जा सकता है, डांडिया रास, रास, नकली युद्ध आदि की प्रवृत्तियां आयोजित की जा सकती है।

ऐसे प्रसंगो में शिक्षक और विद्यार्थी बहुत नजदीक आ जाते है। विद्यार्थियों बहुत नजदीक आ जाते हैं। विद्यार्थियों के हृदय कुछ झुके होते हैं। ऐसे में शिक्षकगण उनके हृदय में प्रविष्ट होकर स्थाई रूप से स्थान वना सकते हैं। इस रीति से प्रिय बने हुए शिक्षक का शिक्षण और नियंत्रण दोनों निश्चित रूप से सफल होते हैं।

शांति का खेल

जहां शांति होती है, अर्थात् जहा अस्वच्छता, गड़बड़, शोरगुल, विक्षेप, बाधा, अंतराय आदि नही होते वहां सब कुछ उगता है, खिलता है, बढ़ता है, विकसित होता है। जिस तरह स्थिर जल में वृक्षो, पहाड़ों आकाश आदि का साफ-सुथरा प्रतिबिंब पड़ता है। तन-मन की शांति में मनुष्य की अपनी शक्ति अशक्तिया तथा गहन अंत-करण के प्रवाह स्पष्ट रीति से दिखाई देते हैं। शांति किसी भी विषय में युक्त होने की अर्थात् योग की प्रथम आवश्यक स्थिति है। शिक्षा का उत्तम कार्य पूर्ण शांति चाहता है। यह शांति आंतरिक व बाह्य दो प्रकार की है। बाह्य शांति अर्थात हमारे आसपास शांति-विक्षेपक तत्त्वों का अभाव, विरोधक प्रवृत्तियों का बहिष्कार। आंतरिक शांति अर्थात शरीर एवं मन की स्वस्थता, शरीर के ऊपर का स्थूल नियंत्रण तथा मन की अचचलता अर्थात् अर्थात विराम या स्थिरता।

आज के विद्यालयों में जाकर देखेंगे तो कान पड़े बोल सुनाई नही देगे। अध्यापकों के कंठ से निकली 'चुप, चुप' की ऊंची आवाज विद्यार्थियों के कोलाहल से स्पर्धा करती महसूस होगी। अध्यापक डडा फटकारेगा और चारों ओर चुप्पी छा जाएगी। लेकिन फिर से मक्खियो वाली भिनभिनाहट शुरू हो जाएगी और थोड़ी ही देर में सब्जीमंडी वाला शोरगुल शुरू हो जाएगा। समझाने के लिए बैठा अध्यापक ऊची आवाज में बोलता है; वैसी आवाज में बोलना उसकी अनिवार्यता है। विद्यार्थी उसके बिना दबते और पढते नहीं। अध्यापक पांच-पाच घंटे गला फाड़-फाड़कर थक जाता है और विद्यार्थियों के कान ऊब जाते हैं। ऊंची

कक्षाओं वाले विद्यालयों मे कक्षाए चलते समय सन्नाटे जैसी शाति मालूम पडेगी, फिर अध्यापक की ही आवाज सुनाई देगी। अगर बाहर थोडी-सी भी गड़बड़ होगी तो सबके कान खड़े हो जाएंगे और सबका ध्यान उस तरफ चला जाएगा। परंतु ज्योही कक्षा छूटेगी, कि जबर्दस्त कोहराम मालूम पड़ेगा। अब तक दबाकर रखी गई शाति का बदला लेने के लिए विद्यार्थियों में जबर्दस्त अशांति-अस्वस्थता मालूम पडेगी। प्रथम प्रकार की अशांति निर्बल नियंत्रण का परिणाम है, जबकि दूसरे किस्म की शाति सख्त नियमन की परिणति है। दोनो एक ही रूप के हैं, दोनों मे स्वय-नियमन की कसर है।

हमारे विद्यालय हमारे घर एवं समाज के प्रतिनिधि मात्र हैं, और यह बताना मुश्किल नही। कितना शोर-शराबा होता है हमारे घरों मे ? हम लोग बिना बात कितना ज्यादा बोलते हैं। वाणी पर नियंत्रण और संयम का विचार ही हमे नया लगता है। एक साथ सबों का बोलना और एक-दूसरे की बातें बहुत कम सुनना मानो हमारा स्वभाव हो गया है। एक को सुनाने के लिए हम इतनी ऊंची आवाज में बोलते हैं मानो दस-बीस लोगों को सुनाना हो। हमारी सब्जी मंडी, बाजार, जातीय भवन, देव-मंदिर आदि मे जहां भी देखेगे, वहां हमें एक ही बात का आभास होगा कि हम बहुत ज्यादा 'कोलाहलिए; हो गए हैं। सुबह से शाम तक का हमारा व्यवहार जिस तरह गरम वातावरण में चलता है, उसी तरह अशांत वातावरण में चलता है। इस तरह एक तरफ यह गरम आबोहवा हमारे शरीर को शक्तिहीन करने में लगी है तो दूसरी तरफ यह अशाति हमारे ज्ञानतंतुओं (Nerves) को निष्क्रिय कर रही है। हमारी थकान का एक ठोस कारण है अशाति। यह बाह्य अशाति जहा हमारा श्वासोच्छ्वास बन रही है, वहीं आतरिक शांति का तो पूछना ही क्या ? अशांत तन और मन को और ज्यादा अशांत करके—नाटक, सिनेमा, पेय आदि उत्तेजको द्वारा—अशांति द्वारा निर्बल होकर हम सो जाते है। इसको हम नींद कहते है। और सुबह ताजे फूलों की भांति खिलने की बजाय बड़ी मुश्किल से हम बिस्तर छोड़ पाते हैं। शरीर गारे जैसा लगता है, मन बीमार, घिरा

हुआ मलिन लगता ह फिर से उत्तेजकों के बीच बठकर उत्तजित हाते है और देह रूपी यत्र को चेतन करके शाम तक आगे बढते हैं और रात को फिर से गिर पड़ते है। अशांति और शोरगुल बेसुरे और बेमेल सुर है। अगर हम चौबीसो घटे भी संगीत सुनेंगे तो हमारे ज्ञान-ततुओ को रच मात्र थकान नही होगी, बल्कि उल्टे आराम मिलेगा। पर यह शोर-शगबा तो मनुष्य-जाति को मारे दे रहा है। यह स्थिति हमेशा की भाति इतनी अधिक स्वाभाविक हो गई है कि हम इस पर विचार तक नहीं करते। इसके साथ हमारी मैत्री इतनी दृढ हो गई है कि इसे छोड़कर हम जा भी नहीं सकते। हम गाव में एकांत में रहते हुए डरते हैं। एकांत में रहना हमारा सुंदर काव्य है, परंतु उससे हम दूर भागते हैं अथवा वहा के सुखद वातावरण को बहुत कम समय तक ही झेल पाते है। उल्टे गाव में अपेक्षाकृत अधिक शांति देखने में आती है। गांव की सीमा में रहने वाला किसान तो उससे भी ज्यादा शाति मे रहता है। जब तक शहर में आता है तो सचमुच अकुला जाता है। इस तरह आज की अंशाति हमे निर्बल बना रही है।

कहना न होगा कि आज तो हम शांति के प्रेम को लगभग भूल ही गए। अशांति का जहर हम पर भली-भांति चढ गया है, और हमें इससे बचने की जरूरत है। आज की जो सपूर्ण अशात स्थिति है उसे टालने तथा शाति का प्रेम विकसित करने का काम विद्यालयो को अपने हाथों मे संभालना है। यह काम ठेठ बाल्यावस्था से ही होना चाहिए। इसके लिए सर्वथा उचित स्थान है। मॉण्टेसरी विद्यालय। यहा आने वाले बालक अगर एक बार शांति-प्रिय हो जाएंगे तो उनका घर, उनका भावी संसार, उनका गांव और उनका समाज शांति-प्रिय बनेगा ही बनेगा। बालक शांति-प्रिय होगा तो जनता शाति का सुख भोगेगी, यही नहीं, शांति मे बढने वाला बालक अधिक वेग और बल से बढ़ेगा।

बालक में शांति विकसित करने के लिए डॉ. मॉण्टेसरी ने दो साधन प्रयुक्त किए हैं। एक साधन है बालकों के निमित्त प्रबोधक साहित्य और दूसरा साधन है शांति का खेल। मॉण्टेसरी के प्रबोधक साहित्य बाल-शिक्षण

मे इतने अधिक सहयोगा है कि बालक बडे ही प्रेम से उनको बार-बार काम में लाते है और जब वालक उनको काम मे लाते-लाते एकाग्र हो जाते हैं तो अपने आप उनका अपने शरीर और मन पर काबू हो जाता है। उनकी प्रत्येक गतिविधि शाति से चलती है। उनको साधनों की खड़खडाहट अच्छी नहीं लगती। उनके हाथो-पैरों और सभी अंगों में नियंत्रण व स्थिरता आ जाती है। उनका मन अचंचल हो जाता है। वह एक ही वस्तु एवं विचार पर केन्द्रित होकर विकास के आनद को अनुभव करता है। अक्षुब्ध जल की भांति उनका मन तरंग-रहित हो जाता है। कार्य करते समय की और बाद की उनकी प्रसन्न व तृप्ति शांति के उत्कट अनुभव की साक्षी रूप होती है। जब प्रबोधक साहित्य को काम में लेते हैं तो उनका पूरा-का-पूरा कमरा एक उद्योगी व शांत समाज के जैसा लगता है। पूरा कक्ष चेतना का प्रेरक बन जाता है तथा वालों वपालों को विराम देता है। जब बालक अपना-अपना काम धैर्य, दृढ़ता व स्थिरता से करते हों, जब काम पड़े तो प्रेम से व मृदुता से धीमे-धीमे बोलते हों तो वह दृश्य मुग्ध कर देता है। ऐसा दृश्य डॉ मॉण्टेसरी ने अपने विद्यालय में प्रबोधक-साहित्य के बल से पैदा किया है। परिणामस्वरूप मात्र कमरे मे ही नहीं अपितु काम कर चुकने के बाद में भी बालकों में शांति का आनंद देखने में आया है। जब बालक काम कर लेने के बाद बाहर आते हैं तब हो-हल्ला नहीं करते; वे दबाए हुए बल को छूट मिलने पर मस्ती नहीं मचात। इसका कारा यह है कि प्रबोधक साहित्य पर काम करते-करते बालक के हृदय मे शांति पैदा हो गई। उसे एक प्रकार का अद्भुत अनुभव हुआ है। इस अनुभव की लहर में बच्चे बाहर भी शांति में रहने तथा फिर से शांति का आस्वाद करना चाहने लगते हैं। इस नाते प्रबोधक-साहित्य शांति-प्रेरक है। नन्हें बच्चों में सीखने की जबर्दस्त भूख होती है, इसी से वे अधिक चंचल लगते हैं। जब उन्हें उचित पोषा मिल जाता है तो वे स्वस्थ बन जाते हैं और चचलता के बजाय शांति अनुभव करते हैं।

बालकों को शांति-प्रिय बनाने के लिए डॉ. मॉण्टेसरी ने एक तरीका निकाला है और यह है शांति का खेल। यह खेल मॉण्टेसरी को एकाएक

सूझा। उनके वहां एक स्त्री अपने एक बच्चे को लेकर आई थी। बालक मां की गोदी में बैठा था। अत्यंत शांत और गंभीर था। ज्योंही डॉ. मॉण्टेसरी उस महिला के साथ विद्यालय में आई कि विद्यालय के बालक तत्काल डॉ. मॉण्टेसरी को नमस्कार करने दौड़े और उस बालक के चारों ओर खड़े हो गए। उस समय डॉ. मॉण्टेसरी को एक विचार सूझा। प्रबोधक-साहित्य से बेशक बालक खेलते थे और उसके माध्यम से जैसा कि ऊपर कहा गया है विद्यालय की तथा व्यक्ति की शांति में बहुत वृद्धि हुई थी, फिर भी डॉ. मॉण्टेसरी को उस योगी जैसे शांत, गंभीर बालक की प्रशांत आनंदमयी मुद्रा भा गई और वैसी प्रशांति अपने विद्यालय के बालकों को देने का उनका मन हुआ। उनको यह अच्छा नहीं लगता था कि विद्यालय के बालक धड़धड़ दौड़ें, भागें या अव्यवस्था के साथ इकट्ठे हों। बालकों की इस कच्चाई को दूर करने का विचार उनके हाथ आ गया। उन्होंने बालकों के साथ बातचीत की और इसे एक खेल का रूप दे दिया। वे बोले, 'देखो, यह बच्चा कितना शांत है? देखो, यह कितना स्थिर है? इसके हाथ-पैर कैसे शांत हैं? इसका पूरा शरीर स्थिर है। इसके चेहरे की ओर देखो। इसका सिर नहीं हिलता है, होंठ नहीं फरफराते, आवाज नहीं आती। कितना स्वस्थ है? कितना शांत है?' बालक उसको देखते रहे। उन्हें बहुत आश्चर्य हुआ। डॉ. मॉण्टेसरी ने आगे कहा, 'तुम भी इसकी तरह से शांत बैठ सकते हो। देखो, बैठो देखें? हां, ठीक से बैठो। अब कोई नहीं हिल रहा अब सब शांति हैं।' यों कहते हुए डॉ. मॉण्टेसरी ने वहीं शांति का वातावरण फैलाते हुए शांति के आनंद का अनुभव कराया। बच्चों को यह खेल पसंद आया और वे बार-बार करने लगे। यहीं से डॉ. मॉण्टेसरी ने शांति का खेल शुरू किया और बच्चों को यह खेल खेलाया जाने लगा। उनमें दो-एक प्रकारों का यहां उल्लेख किया जा रहा है।

सब बच्चे एक कमरे में काम कर रहे थे, तभी एकाएक खिड़की-दरवाजे बंद होने लगे अथवा खिड़कियों पर पर्दे गिरने लगे और कमरे में धीमे-धीमे अंधेरा होने लगा। जैसे-जैसे अंधेरा बढ़ता गया वैसे-वैसे बालकों का

उसकी तरफ ध्यान खिचता गया और वैसे वैसे वे अपना काम छोड़कर अपने स्थान पर स्थिर बैठने लगे जैसे-जैसे दरवाजे बंद होते गए कि सभी बच्चे स्थिर बैठ गए। उनका हिलना-डुलना बंद हो गया। जरा-सी भी आवाज नहीं थी। आगे होने वाले मनोविनोद की आशा में वे अभिमुखता से प्रतीक्षारत थे। आगे होने वाले मनोविनोद की आशा में वे अभिमुखता से प्रतीक्षारत थे। तभी डॉ. मॉण्टेसरी की कोमल आवाज सुनाई दी और एक के बाद एक बच्चे का नाम पुकारा गया। बहुत धीमे से, नितांत होले-से, मात्र सुनाई दे सके इतने धीमे से। शांति के वातावरण मे जो एक ढंग का आनंद छा जाता है उसमे एकाध बालक का नाम पुकारे जाने पर जो सुंदर-शांति-भंग होता है उस शांति का गौरव और गंभीर्य ही अधिक होता है। उस समय बालक को खूब मजा आता है। पंजे के बल चलकर बालक डॉ. मॉण्टेसरी के पास गए और वहीं बैठ गए। डॉ. मॉण्टेसरी ने मुस्करा कर उनका उत्साह बढ़ाया। डॉ. मॉण्टेसरी की आवाज से बालकों को इतना ज्यादा प्रेम था कि प्रत्येक बालक अपना नाम पुकारे जाने की प्रतीक्षा में था और सभी बच्चे उनका नाम पुकारे जाने तक शांति से बैठे रहे। इस खेल में बालकों को शांति के आनंद का अनुभव अधिक-से अधिक होता था और वे इस खेल को ज्यादा-से-ज्यादा पसंद करते थे। जैसे-जैसे शांति का समय बढ़ता गया शांति अधिकाधिक फैलने लगी, ओर एक तरह का अपूर्व आनंद सर्वत्र फैल गया। इस समय बालक मक्खियों की भिनभिनाहट सुनकर यह समझने की स्थिति में थे कि वह आवाज उनकी शांति मे विक्षेप डालने वाली थी। बल्कि अपने शरीर पर बैठी मक्खी को भी बालक उड़ाना नही चाहते थे क्योंकि उससे शांति-भंग होने का अंदेशा था। वे अपने श्वासोच्छ्वास को भी धीमे बहा रहे थे। बालकों को हम अशांत और अति चंचल मानते हैं और जो हमें ऊपर से ऐसे नजर नहीं भी आते हैं, यदि वही बच्चे शांति से बैठते हों, हौले चलते हों, धीमे-धीमे बोलते हो तो इसे एक चमत्कार ही कहना होगा और इस चमत्कार की सर्जक थी डॉ. मॉण्टेसरी। बालक या मनुष्य शांतिप्रिय है। वह अंतर्मुखी होना चाहता है। पर वर्तमान अशांति का, बहिर्मुखता का

प्रवाह उसे खडे नहीं रहन देता उस शांति के पास जाने नहीं दता बालको को जब काम करते देखा तो डॉ. मॉण्टसरी ने उनमे एक प्रकार की एकाग्रता की शाति का अवलोकन किया; यहां उन्होंने वही शांति अन्य स्थान पर देखी; और ये दोनों प्रकार की शाति शाला के वातावरण को शात बनाती गई, ऐसा अनुभव हुआ। डॉ मॉण्टेसरी ने कहा था, 'बाल-मदिर मे शांति की क्रीडा आवश्यक है। यह शांति-प्रेरक व शाति-स्थापक होती है। प्रत्येक प्रवृत्ति की शुरुआत में बालक यह क्रीडा करें। बालक जिस तरह अन्य साधनो को स्वेच्छा से काम मे ला सकते हे उसी तरह शांति की क्रीडा भी जब अनुकूल लगे तभी खेल सकते हे। अध्यापक भी इस खेल को खेलाने की विधियां मॉण्टेसरी शाला के सिद्धांतो के अनुरूप जो मान्य हों, वैसी संयोजित कर सकते है।

डॉ. मॉण्टेसरी को जब भी इच्छा होती अपने विद्यालय मे जाकर श्यामपट्ट पर लिख देती, 'Silenzh—शांति।' काम करते-करते बालक एक के बाद एक जब श्यामपट्ट पर लिखा पढते तो काम छोड़कर शाति का आनद लेने बैठ जाते। काम का आराम शुरू हो गया। सभी बालक क्षणभर में शांति हो गए और थोड़ी ही देर की शाति में, स्नान करने के बाद जैसे शरीर स्फूर्ति प्राप्त कर लेता है, वैसे मन की स्फूर्ति प्राप्त करके वापस जोश के साथ काम में बैठ गए।

ऐसी क्रीड़ा प्रत्येक बाल-मंदिर में आवश्यक है। अन्य विद्यालयो को भी इसका लाभ उठाना चाहिए।

ऊपर डॉ. मॉण्टेसरी शांति का खेल कैसे खेलाती थीं, इसका एक प्रकार बताया गया है। अगर हम भी इसी तरह के शांति का खेल खेलाने बेठ जाएंगे अर्थात् फकत इसकी नकल करेंगे तो शांति की क्रीड़ा एक मखौल बन जाएगी। अगर बालक रोजाना पंद्रह मिनट या आधे घंटे सचमुच मन पसद खेल के बतौर 'शाति का खेल' न खेलें, खेलते समय एक रुढि के बतौर इकट्ठे होकर केवल खेल का नाटक करें, खेलते समय उनके मन में या चेहरे पर इसका आनंद न हो, खेलने के बाद उल्टे अशांति पेदा करने लगं और स्वेच्छा पर छोड़ दें तो कमरे से बाहर निकल कर बैठ

जाग तो समझ लेना चाहिए कि शांत का खेल अनुकरण मात्र था मात्र नकल करने से तथा इसका वास्तविक मर्म न समझने से ऐसा ही होता है। अतः शांति की क्रीडा कराने वाले अध्यापक को अनुकरण न करने की चेतावनी दी जाती है। उसे शांति की क्रीडा का असली हेतु समझकर उसके खरे स्वरूप में आयोजित करना चाहिए। प्रत्येक विद्यालय को खेल का हेतु ध्यान मे रखकर इसकी कारीगरी का अंतःस्वरूप 3समझकर आसपास की परिस्थिति में अनुकूल लगने वाली रीति से यह क्रीड़ा शुरू करनी चाहिए।

शांति के खेल को सचमुच सफल बनाना हो तो तीन बातें आवश्यक है। एक--शिक्षक की योग्यता, दूसरी—वातावरण की जमावट और तीसरी—बालको की अभिमुखता व तैयारी।

शांति का सच्चा अर्थ समझने वाला अध्यापक ही यह खेल खेला सकता है। शिक्षक 'शांतिप्रिय' होना चाहिए, पर 'चाहिए' अर्थात तत्त्व स्वीकार में नहीं अपितु उसके अपने जीवन में है। उसकी इंद्रियां और मन स्वतः शांति की तलाश करने वाले हो और अशांति को न सहने वाले हो, वह क्रीड़ा के समय शांत रह सके पर पूरे समय अशांत रहे, अर्थात उसमे स्वयं में शांति न हो; तो ऐसा शिक्षक अपने आप में शांति का आदर्श नही होता। उसका काम अंत मे जाकर शांति में परिणत नहीं होता। वह सचमुच शांति का खेल नही चला सकता। जिस प्रकार जहाज के कप्तान के मन में सागर के बीचोबीच और उछलती लहरों के बीच भी स्थिरता ओर संतुलन होता है वैसे ही शिक्षक के मन मे भी पूरे समय ऐसा ही संतुलन चाहिए। ऐसा शिक्षक गतिपूर्वक शांति का खेल खेला सकता है। उसका अपना वातावरण ही एक प्रकार की शांति की क्रीडा होता है।

ऐसा शांतिप्रिय शिक्षक शांति—अशांतिके बीच सूक्ष्म अंतर कर सकता है। वह मधुर आवाज (Sound) ओर शोरगुल (Noise) के बीच अंतर कर सकता है। वह अच्छे संगीत और बेमेल गड़बड़ के बीच फर्क समझ सकता हैं वह निस्सर्ग की ध्वनियों के आनंद में तथा रेलवे या मिलों की खटपट के बीच अंतर कर सकता है। ऐसा अध्यापक शांति, मधुर

रवयुक्त शाति तथा अशाति के बीच वह फर्क कर सकता है। एसा अध्यापक शांति का वातावररण या जो इस खेल मे अत्यावश्यक वस्तु हे, उसकी अच्छी तरह से रचना के कर सकता है।

शांति का वातावरण शाति-प्रेरक है। हमारा स्वभाव शांनि में शाति और अशांति में अशांति पैदा करने का है। किसी शांत भव्य योगी की गुफा मे जाएंगे तो हम शांति की सांस लेने लगेगे। वहां हमारा गड़बड करने का मन भी नहीं होगा। गुफा की शाति का हम पर प्रभाव पडेगा। यही बात प्रत्येक शांति-प्रिय स्थान के साथ लागू होती है। उल्टे हम जातीय आयोजन में, जुलूस में या बाजार में, जहां अशाति फैली होगी, जाकर खड़े रहेंगे तो उसमें हम भी वैसे ही हो जाएंगे। वह वातावरण हमे वैसा बनने का बाध्य कर देगा। सारांश यह है कि शांति का वातावरण शांति देता है और शोर-शराबे का वातावरण अशांति पैदा करता है।

जैसा बड़ों को लेकर हमारा अनुभव है, वैसा ही बालकों को लेकर है। किसी शांत कमरे में, किसी शांत बगीचे में, किसी शांत सग्रहालय मे बालक को छोड़कर तो देखें। शांतिमय वातावरण मे उसकी चंचलता स्थिर होगी, वह स्वस्थ और संयमी बनने लगेगा। वह अपना सर्जन सफाई ओर जोश के साथ करने लगेगा अर्थात छोट हो या बड़े, शांति का प्रभाव सबके लिए शांति-प्रेरक होता है।

आइए, अब जरा इस बात पर विचार करें कि शांति के खेल मे आसपास का वातावरण कैसे रचें ! सबसे पहले तो शिक्षक की आवाज धीर-गंभीर हो। चेहरे शांत हो। उसके साथी भी वैसे ही हों। शाति-विरोधी तत्त्वों का यथा—मोटर की भों-भो, मदारी के खेल, बालकों की हंसी याद दौड भाग के खेल, बड़े-बुजुर्गो की ऊंची आवाज में बातचीत आदि का अगल-बगल मे नितांत अभाव होना चाहिए। कहने का मतलब यह है कि शाति के वातावरण में मिलकर शांति को जो बढाए या मधुर करे, उसके अला अन्य घटनाएं या आवाजे वहां वही होनी चाहिए। परंतु शांति को कोमलता से भंग करके जो शांति का सही स्वरूप बता दे, अगर ऐसी आवाजें आसपास हो रही हों उदाहरणार्थ नजदीक या कहीं दूरी पर मधुर

स्वर मे कोयल कुहुक रही हो या कमर मे घडी की टिक् टिक बज रही हो, या मृदु-मट पवन का लहरा का धीमा धीमा स्वर सुनाइ दे रहा हो या कोई ऐसी ही तालबद्ध प्रवृत्ति चल रही हो, जो बाधक न हो। शाति अर्थात निपट शाति यह एक स्वरूप है, नीरवता का वहां दर्शन भी होना चाहिए। पर दूसरी-दूसरी आवाजो में अगर सुरीलापन हो तो वह भी शान्ति है, अंशाति नहीं। इसका भी ख्याल आना चाहिए।

खेल का कमरा शांति-प्रेरक होना चाहिए। हल्का अंधेरा, हल्के कलात्मक रंगों में रगे पर्दे व दीवारें तथा उपकरण भी शाति-प्रेरक तत्त्व है। इनकी अवगणना नही होनी चाहिए। खेल वाले कमरे मे अगरबत्ती की या मधुर फूलो की महक आवश्यक है। दूर के गवाक्ष में एकाध मद-मद जलता घी का दीपक भी शांति मे सहायक होगा। कमरा साथ-सुथरा और सजा-धजा हो, भीतर कोई आवाज ने हो, खिडकी-दरवाजे खटाखट न कर रहे हों, पर्दे फड़फड़ा न रहे हों, वहां खड़ा अध्यापक स्वयं शाति की एक प्रतिमुर्ति हो, ऐसे में अंतदर आते ही बालक वहा की शांति से आकृष्ट होगे और शांति होने लगेगे। यह हुआ शाति के खेल का वातवरण।

अब हम बालको की अभिमुखता और उनकी तैयारी पर जरा बिचार करे।

इस खेल में उसी बालक को सम्मिलित करें जो अभिमुख हो। रोने वाले को शामिल न करे। अंधेरा जिसे पसद न हो, उसे भी एक वार अलग रखे। जिसे तैयारी की तालीम देना मुश्किल लगे, उसे या तो बाहर रखे या अलग बिठाएं अर्थात उसका एकाकी-करण करें। परंतु बालक को जवरदस्ती खेल में शामिल करने से इस खेल के प्रति उसके मन में उल्टा विरोध पेदा होगा। उसे इस बात का कभी ख्याल ही नहीं आएगा कि शाति क्या है, फिर शांतिप्रिय भला होगा भी कैसे ? अतएव अन्य विषयो मे भी उसे चयन की छूट दे। आखिर तो उसे सबके साथ जुड़ना ही है। जब वह कौतुक के साथ अपने आप आए तभी उसे आने दें, परतु खेल म उसे भाग लेना ही चाहिए, ऐसा आग्रह न रखें, अगर भाग न ले सके तो उसे वाहर भी न निकालें अगर उससे गड़बड होती हो। गड़बड़ होती

हो तो उसे वहां न रखें शांति के खेल को एकाध शोर मचाने वाला बालक बिगाड़ देता है, वह दूसरों के लिए त्रासदायी बन जाता है। अतः ऐसे बालक को दूर रखें। उसको बाहर न निकाले तो किसी अलग आसन पर या कुर्सी पर बिठा दें। शांति का खेल तो उन्ही बालकों से शुरू किया जाए, जो अभिमुख हों।

परंतु शांति के खेल के लिए तैयारी की जरूरत होती है। सम्पूर्ण शांति तो तब आएगी कि जब सबके सब बिना हिले-डुले बैठे हो। उन्हे मक्खी उड़ाकर गड़बड़ करना भी न सुहाए; नाक से रेंट बहती हो तो भी न सुहाए, उठकर जाना पड़े तो धीमे-से, बात भी करनी हो तो होठों में, कुछ लेना-रखना तो तो धीमे-से और सफाई से, ताकि आवाज न हो। ये सब गुण बालक में आने चाहिए। पर अगर हम बालक से कहेंगे कि 'पाल्थी मारो', 'गडबड़ नहीं' तोवह नहीं आएगार। पल भर को उसमे शांति नजर आएगी, पर अगले ही क्षण दुगनी गड़बड़ हो जाएगी। अतः यह सब कैसे हो, यह बालक को बताया जाए। यह बताने में भी एक तरह का शांति का खेल है क्योंकि जब ावलक 'कैसे चलें', 'कैसे बोलें' इसका पाठ सीखते हैं तो वे एक शांत समूह बन जाते हैं और कमरा शांति की प्रक्रिया मे आ जाता है।

शिक्षक को शांति के खेल के अंगो को समझते हुए धीमे चलना, धीमे दौड़ना, धीमे बैठना, धीमे बोलना आदि सब काम धीमे और सफाई से करना सिखाना है। लेकिन यह काम उपदेश से नहीं, सामने क्रिया करके, सब बालको के सामने वह क्रिया करके तथा बालकों को उस क्रिया की सूचना देकर। शिक्षक धीमे-धीमे पंजों पर चलकर बताए और बालक एक के पीछे एक वैसा करें, यही रीति अन्य प्रसगों में भी आजमाई जाए—सिर्फ शांति की क्रीडा के स्थान पर ही नहीं अपितु जहां-जहां भी वे सब इकट्ठे हो। इससे बालको में धीमे-धीमे चलने का नियंत्रण पैदा होगा। यह काम शिक्षक को मॉण्टेसरी पद्धति के पाठ पढ़ाने के सिद्धांतो का अनुसरण करते हुए ही करना है। कुल मिलाकर शिखक को यह जानना चाहिए। कि बालक में शरीर, वाणी आदि पर नियंत्रण की कहां

जरूरत है यह जानकर उसे नियंत्रण करने की विधि बालक को बता देनी चाहिए वह क्रिया का पुनरावर्तन करके क्रिया को सिद्ध कर लेगा उस समय का दृश्य देखने योग्य होगा। एक बालक शिक्षक के बताए मुजब बराबर करेगा तो दूसरा उसको देखने में तल्लीन होगा। इस तल्लीनता से शांति स्थिर हो जाएगी। ऐसे प्रत्येक अवसरों पर शिक्षक ऐसा कहे बिना न रहें कि 'वाह, कैसी मजेदार शांति है। हम तरह जो बैठे है, इस तरह धीमे-धीमे चलते है, इस तरह धीमे-धीमे बोलते हैं; कैसी सरस शांति है। यह खेल कितना सुदर है। जो बच्चे इस तरह का खेल खेलना चाहते हो, वे अपने हाथ ऊपर उठा दे ताकि बारी-बारी से उनको भी खेल में शामिल किया जा सके !' एक के बाद एक बालक चलने, वस्तु उठाने, बात करने, दोडने या धीमे-से किसी को छूने के लिए खडे होंगे, और एक तरह की आनंदमयी प्रवृत्ति मे सभी का बहुत-सा समय गुजर जाएगा। यह भी शांति का ही एक खेल है।

शिक्षक वहां घटित होने वाली घटनाओं का शांति-अशांति की तरफ ध्यान खींचने के लिए लाभ लेने से न चूकें। किसी बालक के नाक से रेंट सुडसुड़ाएगी तो शिक्षक बोलेगा, 'नाक से सुड़ासुड़ाने की आवाज आ रही है।' बाहर कोई धड़-धड दौड़ेगा तो शिक्षक उसकी तरफ ध्यान खींचेगा। कोई मधुर गा रहा होगा तो शिक्षक उसकी मधुरता की तरफ ध्यान आकृष्ट करेगा। कोई बालक दरवाजे से टकराएगा, शिक्षक स्वयं चलते हुए किसी बालक से टकराएगा तो इस तरह के विक्षेप की तरफ वह बालकों का ध्यान खींचेगा। सक्षेप में कहना चाहिए कि शिक्षक शांति-अशांति के रूपों की तरफ बालकों का ध्यान खींचेगा और उनका प्रत्यक्ष अनुभव समझाएगा।

जिस समय शिक्षक शांति की क्रीड़ा के अगों को सिद्ध कर रहा होगा उस समय वह बालकों के सामने उनकी पूर्णता प्रस्तुत करेगा। नए बालकों के लिए वे तमाम बातें एक ही दिन में सिद्ध करने योग्य नहीं होंगी। इसके लिए तो उन्हें कई-कई दिन लगेंगे। शिक्षक को पुनरावर्तन के लिए बालकों को छूट देनी होगी। छूट मिलेगी तो शिक्षक के बताए अनुसार

बालक जहां-तहां क्रियाएं करते दिखाई देंगे साधना की इस अवधि के दौरान अध्यापक को बालकों की अपूर्णताओं को लेकर कमियां निकालने की जरूरत नहीं है कि 'देखो भैया ! यो नहीं चलेगा, यो तो गड़बड़ हो जाएगी।' देखो बहन ! तुम तो बोलकर गड़बड़ कर रही हो। शांति की क्रीड़ा के लिए तुमको बातचीत करना किस तरह बताया गया था ?' मॉण्टेसरी शालाओं में जिस तरह दूसरी तमाम स्थितियों में त्रुटियाँ नहीं निकाली जातीं, वरन त्रुटियों को रोकने के लिए बालक के समाने बार-बार सही मार्ग प्रस्तुत कियसा जाता है, वैसे ही यहां करना होगा। इस तरह यथा समय अमुक काम कैसे होता है, वही बालको को करके बताना होगा।

धीरे-धीरे खेल के सभी अंग बालक में खिलने लगेंगे और शांति का खेल खेलने का का समय आ एउस समय जैसा कि ऊपर वर्णन किया गया है, वैसी क्रीड़ा की जा सकेगी। बालक सुदर-शोभायमान कमरे में आकर बैठे होंगे भव्य, शांति, प्रसन्न चेहरे वाले शिक्षक खड़े होंगे, धीरे-धीरे मद-मद अंधकार होने लगेगा, वैसे-वैसे बालक स्थिर होने लगेंगे और अंत मे सम्पूर्ण समूह एक व्यक्ति जैसा बन जाएगा। मधुर सुवास में, घी के दीपक के प्रकाश में तथा शांति में बालक ज्यादा-से-ज्यादा स्थिर व प्रसन्न होंगे। वे इस बात के लिए उत्सुक होंगे कि अध्यापक जी उन्हें क्या कहेंगे ! शिक्षक या तो कहेंगे, 'आखें बंद।' सब आखे बंद कर लेंगे। शिक्षक कहेगा, 'सुनो, दूर कहीं कबूतर गुटरगूं कर रहा है। बाहर वृक्ष के पत्ते सरसरा रहे हैं। घड़ी टिक-टिक कर रही है।' बालक सुनने के लिए कान देंगे। शरीर के साथ इंद्रियों की तथा मन की, एकाग्रता होगी, शांति बढ़ेगी। कभी शिक्षक स्वयं गभीर शांति मे डूब जाएगा और सब-के-सब नि:स्तब्धता मे बैठे रहेंगे। जैसे-जैसे समय बढ़ेगा, शांति क्षीण होने लगेगी। बच्चे एक तरह के रोमांच का अनुभव करेंगे। संभव है शिक्षक कोई मधुर-सा गीत धीमी आवाज में सुनाए, संभव है वह मधुर स्वर मे सबको अपने समीप बुलाए या नाम बोलकर खडत्र करेगा और फिर बिठा देगा। यह भी संभव है कि शिक्षक भावनात्मक वातावरण में अंतर्मुखी हो जाए

आर एकाग्र का स्थिरता का तथा   का रहस्य मंत्र स्वयं पढ़ना
नन्हे शरीर से व नन्ही-सी योग-साधना करेंगे।

आखिर खेल समाप्त होने आएगा। खेल तभी तक चलेगा, जब तक कि वह बालकों को पसंद आएगा। अभिमुखता और प्रसन्न हो तभी तक उसका आनंद रहता है, अन्यथा निरर्थक दबाकर रखने जैसा ही होगा। लेकिन खेल समाप्त होने पर धीरे-धीरे दरवाजे खुलेंगे, प्रकाश आएगा तो बालक एक-दूसरे का मुस्कारता चेहरा देखेंगे। खेल की समाप्ति के बाद वे अन्य प्रवृत्तियों में अधिक शांति व जोश के साथ भाग लेंगे।

शिक्षक शांति के खेल का मूल मर्म ध्यान में रखते हुए खेल के प्रकारों में विविधता ला सकता है, पर उसे यह नहीं भूलना चाहिए कि शांति के खेल मे विविधता लाने का आग्रह मुख्य बात नहीं है। बालमंदिर में अर्थात मॉण्टेसरी शाला मे इस खेल का उतना ही अनिवार्य स्थान है, जितना गड्डा-पेटी का।

अगर अन्य विद्यालय भी इस खेल का लाभ उठाएं तथा अपनी अनुकूलता के मुताबिक खेल की विधि में परिवर्तन करें तो आज के विद्यालयों मे व्याप्त शोर-शराबा घटेगा ही। इस खेल को अपनाने वाले प्रत्येक व्यक्ति को इतना तो याद ही रखना चाहिए कि यह खेल अनिवार्य कभी न हो। इसके प्रति प्रेम उत्पन्न किया जाएगा, तभी इसका फायदा मिलेगा। आज का प्रत्येक विद्यालय अगर एकमात्र शांति की क्रीड़ा को ही यथार्थ रीति से दाखिल कर सके तो हमें शोर-शराबे के एक रोग से तो वर्षों बाद मुक्ति मिल सकेगी, हम आज की तुलना में और अधिक सचेतन बन सकेंगे।

●●

प्रदर्शन

कला-विकास का वातावरण देने के लिए शाला में अलग-अलग अवसरों पर प्रदर्शनों के आयोजनों की परपरा अत्यंत जरूरी है। इन प्रदर्शनों का प्रदेश प्रर्याप्त व्यापक है। बालकों के बनाए चित्र, कैंची के काम, मिट्टी के काम में ही यह प्रदेश समाप्त नहीं हो जाता। प्रदर्शनों का हेतु बालकों के समक्ष प्रकृति तथा मनुष्य-वृत्ति का विद्यालय भवन के भीतर परिचय कराना है तथा उसके माध्यम से प्रमुखतया कला-सृष्टि का प्रदर्शन कराना है। बेशक बालकों के सृजन कला-प्रदर्शन मे महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं, परंतु वे बालकों के लिए भी हैं और दूसरो के लिए भी। जबकि अन्य सर्जन बालक के लिए ही समझकर शाला में लाए जाते हे।

संपूर्ण प्रकृति में जाकर मिल जाना, संपूर्ण मनुष्य-कृति को शाला के बाहर जाकर देखना, यह नन्हे बालको के लिए सभव नहीं, लेकिन इन दोनों कृतियों का परिचय सर्जक वातावरण के वतौर देना आवश्यक हे। इसीलिए शाला में प्रदर्शनों का स्थान रखा गया है। शाला में इसे एक नई प्रथा माना जाता है, पर समाज में यह नई नहीं है। समाज अपने उत्सवो के साथ कलात्मक कृतियों के प्रदर्शन हमेशा करता आया है। देव-मदिर के प्रत्येक उत्सव में होने वाले शृगार इस तरह के कलात्मक प्रदर्शन ही हे। वर यात्रा और ऐसे ही प्रसंग, रथ यात्रा, आदि भी ऐसे ही प्रकार हैं। इन सामाजिक घटनाओं से बालकों को कुछ देखने को मिलता है, परंतु छोटी उम्र में जिस रीति से कला का वातावरण उनके सामने आना चाहिए, उस रीति से नही आता, अत: इनके अवलोकन का बालकों को अपेक्षया कम लाभ मिलता है।

फिर संग्रहालय भी तो एक तरह की प्रदर्शनिया हैं। वे सामयिक नही अपितु स्थाई होते है अतः हमेशा देखने योग्य तथा उपयोगी होते हे।

पर ० ज्यादातर सग्रह का दृष्टि स बनाए जाते ह अत उनमे अनक प्रकार की चीज दखन का मिलती ह जिसस बाल-मान पर इनका असर बहुत ही ऊपरा आर अव्यवस्थित होता ह और इनके अवलोकन का कम लाभ मिल पाता है। कई वार सग्रहालय कला की दृष्टि से सजाए हुए नहीं होते। उनमें कलात्मक वस्तुएं अस्तव्यस्त ओर गड्डमड्ड पडी होती है, ऐसे में बालक कला का वातावरण ग्रहण नहीं कर सकते। बालक कला के वातावरण को चूस सकें, इसके लिए एक साथ अनेक कलाओं का प्रदर्शन नहीं होना चाहिए तथा जो भी कला-विभाग प्रदर्शन के लिए सजाए गए हो, वे व्यवस्थित होने चाहिए।

घर मे भी थोड़ी-बहुत कलात्मक वस्तुएं आनंदमयी तथा वातावरण प्रदान करने वाली होती हैं। वे बडो के लिए निर्मित होने के कारण बालको के लिए निष्फल जाती हैं। इस तरह कहना न होगा कि बालकों को कला का वातावरण घर पर, सग्रहालयों से तथा खुले रूप में प्रकृति के आंचल मे मिलता जरूर है, पर वह सीमित मात्रा में होता है, ऐसे मे विद्यालयो को उस कमी की पूर्ति करने का प्रयास करना चाहिए।

शाला में प्रदर्शनी रचने में पहली महत्त्वपूर्ण बात यह ध्यान में रहे कि एक समय मे एक ही कलाकृति का प्रदर्शन किया जाए। विविध कलाओं का एक साथ प्रदर्शन करने से कला की समझ के विकास मे स्तरीयता आ जाती है। प्रारभ एक-एक कला के सादे प्रदर्शन से ही करना समाचीन रहता है।

ऐसे कलात्मक प्रदर्शनो के लिए हमे अलग-अलग प्रदेश खोजने है। मानवीय सृजन तथा प्राकृतिक सृजन दोनो क्षेत्रों से प्रदर्शनीय वस्तुओ पर विचार करें। सामाजिक उत्सवों से धान्य की विविध रागोलियों का प्रदर्शन, कलशों आदि तांबे-पीतल के बर्तनो का प्रदर्शन—ये सभी प्रदर्शनीय प्रदेश है। जीवन मे जिन-जिन चीजों को हम काम मे लेते है, उन सभी चीजों का एक-एक प्रदर्शन संभव है। सामान्यतया जिस रूप में चीजो को हम काम मे लाते है, उनकी कलात्मकता अति परिचय के कारण हमारे ध्यान से बाहर रह जाती है। उन तमाम चीजों की कलात्मकता, जब अमुक रीति से सजाई जाती है तभी सामने आती है। तभी वे बालको, बड़ो, सभी का मन आकर्षित करती हैं और सभी के मन पर कला के वातावरण की छाप

पडता ह

प्रत्यक दुकान, जहा कला का चीज वची जाती ह, कला-प्रदशना नही है क्योंकि वहा दृष्टि अलग होती है। यह दृष्टि बेचने की होती ह, इसी दृष्टि से उनकी प्रस्तुति होती हैं इसी भांति घर मे जहा कलात्मक वस्तुए पड़ी चीजो स जुदा होता है और वह दृष्टि भी जुदा होती है।

शाला में रोज-रोज प्रदर्शनिया लगाना सभव नहीं होता। हा, वह प्रदर्शनी का स्वाभाविक समय तय कर सकती है। वह कला की दृष्टि से सामयिक उत्सव आयोजित करके उसके साथ प्रदर्शनी को जोड़ सकती है। हमारे उत्सव प्रदर्शनी के प्रसंग होते हैं। उत्सवों का हम समाज मे दूसरी तरह से मनाते हैं। उनका कलात्मक अंग हमें प्रदर्शनी के रूप मे आयोजित करना चाहिए। ऐसे उत्सवो के प्रसगा को हमारे समाज और धर्म ने पर्याप्त सख्या मे निर्मित किया है, हमे उन सभी का लाभ उठाना चाहिए। उत्सव की शोभा बढ़ाने वाली प्रदर्शनी ही उपयोगी सिद्ध होगी, यह ध्यान रखे। होली की प्रदर्शनी अलग ढंग की और दीवाली की अलग तरह की होनी चाहिए। दोनों प्रदर्शनिया अपनी शैली मे तो भिन्न हों ही, द्रव्यों में भी जुदा-जुदा हों।

ऋतुओ के अनुसार भी प्रदर्शन का समय रखा जा रखता है। जब वर्षा ऋतु मे तरह-तरह की घास और फूल खिल जाते है तो उन सबकी एक अलग ढंग की सुदर प्रदर्शनी हो सकती है। इसी ऋतु म वाड़ी-वाडी पेदा होने वाले ग्राम-फूलों की एक और प्रदर्शनी हो सकती है तो ऋतु-ऋतु मे पैदा होने वाले फूलों की तीसरी प्रदर्शनी हो सकती है। फूलो की प्रदर्शनी एक सामयिक प्रदर्शन है।

इसी भाति ऋतु-ऋतु में पकने वाले धान्य का प्रदर्शन भी प्रदर्शनी म आ जाता है। इसी भाति प्रकृति हमें समय-समय पर फलों-पत्तों का जो उपहार देती है, उसे स्वीकार करते हैं हुए, वालको के समक्ष उसे एक ही स्थल पर प्रस्तुत किया जा सकता है तथा इस तरह प्रकृति की शोभा एव उदारता का प्रदर्शन किया जा सकता है।

प्रकृति में मात्र वनस्पति ही नही है। अनेक रगो के पत्थर भी हमं एक प्रदर्शन-सामग्री उपलब्ध करा सकते है, सागर तट के शंख-सीपियां मे से भी कितने ही उपहार प्रदर्शित किए जा सकत हैं। तरह-तरह की

साग भाजियो की एक अलग प्रदशनी हो सकती है बीजो का भी प्रदर्शन किया जा सकता है

जिसे यह पता हो कि प्रकृति के आंचल से कितनी ही तरह की सामग्री बटोर पर प्रदर्शित की जा सकती है, वे तो पखो, रेत, माटी, पक्षियो के घोसलो, जीव-जतुओं के घरों तथा आवास स्थलों का उपयोग कर सकते हैं।

प्रकृति मे स्थान-स्थान पर कला और विज्ञान उपलब्ध है। एक प्रदर्शन कला की दृष्टि से तो दूसरा विज्ञान की दृष्टि से; तथा दोनों प्रदर्शन कला-विज्ञान की दृष्टि विकसित करने के लिए हमेशा महत्त्व का स्थान रखते है।

प्रकृति को छोडकर मनुष्य द्वारा निर्मित रचनाओं पर गौर करें तो उनके भी कितने ही प्रदर्शन हो सकते हैं। मिट्टी की चीजों के, लकड़ी की चीजों के, चांदी की चीजो के, पीतल की चीजो के, लोहे की चीजो के, सोने-चांदी-माणक-मूंगों के, वस्त्रो, कढ़ाई, सिलाई, बुनाई के, कपड़ो की छपाई और चित्रकला आदि के, इसी भांति आज जो अनेक तरह की कला-कारीगरी के काम हो रहे हैं, उन सबके प्रदर्शन किए जा सकते हैं। प्रत्येक विषय की अलग-अलग प्रदर्शनियां लग सकती हैं।

इन प्रदर्शनियों से बालको को जानकारी मिलेगी कि प्रकृति मे क्या-क्या उपलब्ध है तथा मनुष्य की सृजनशीलता में कितनी विविधता है। बाजार मे या प्रकृति के प्रांगण मे बालक घूमता है, पर वहां उसके सामने कलात्मक दृष्टि से ये वस्तुएं रखी हुई नहीं होतीं, वरन बिखरी हुई पड़ी होती है। कला अर्थात मनुष्य के माध्यम से प्रकृति के बलों का प्रकट्य। ऐसा अर्थ लेगे तो प्रदर्शन के माध्यम से ही हम, प्रकृति की कला को प्रस्तुत कर सकेंगे अर्थात प्रदर्शन, प्रस्तुति की कला के वाद स्वयं एक कला-रूप बन जाता है।

प्रदर्शनी को संजोने में जानकारी होनी चाहिए। शिक्षक को प्रदर्शनी सजाना सीखना चाहिए। जहां—तहां से लाकर जैसे—तैसे डाल देना कला प्रदर्शन नही होता वह दुकान अथवा स्टाल बन सकती है। इसीलिए दुकाने या अन्य प्रदर्शन यथा स्वदेशी-प्रदर्शन वस्तु-प्रदर्शन वस्तु-प्रदर्शन मात्र होता हे, कला-प्रदर्शन नहीं। शाला की प्रदर्शनी में हमें वस्तु भी बतानी है,

लेकिन कलात्मक रीति से अत्त प्रदर्शनी के लिए शिक्षक को प्रदर्शनी के सिद्धांत एवं कला को जानना होगा।

प्रदर्शनी मे अवकाश मुख्य तत्त्व होता है। जब अवकाश को जबर्दस्ती भर दिया जाता है तो वस्तु का प्रदर्शन नहीं होता। प्रदर्शनी कक्ष में प्रदर्शनीय वस्तु के कद को ध्यान मे रखते हुए उसकी लबाई, चौडाई, गहराई तय की जानी चाहिए। वस्तुएं छोटी हो और तलघर मे ही रखनी हो, तब भी कमरे की दीवारों को इस तर सजाना चाहिए कि तलघर खुला-खुला नजर आए। दीवारों का अवकाश तलघर के अवसर के मेल पर भरना चाहिए। प्रदर्शित वस्तुओं से ही अवकाश के संपूर्ण भरने की जरूरत नहीं है, उसमे फूलदान, धूपदान, दीपदान रखने तथा आने-जाने के रास्तो के लिए पर्याप्त जगह रखने के बाद ही सजाना शुरू किया जाए। प्रदर्शनी में रंगोली को भी स्थान दिया जाए। इतनी बात हमेशा ध्यान रहे कि प्रदर्शनीय वस्तुओं को मुख्य तथा विशेष अवकाश मिले। अन्य चीजो को गौण अवकाश दें।

प्रदर्शनी का स्थान निश्चित करते समय प्रकाश के बारे में भी विचार कर लेना चाहिए। जिस-जिस समय प्रदर्शनी बतानी हो उस-उस समय प्रदर्शनी पर कितना प्रकाश पड़ेगा, यह ध्यान मे रखकर ही वस्तुए वहा सजानी चाहिए हो उस प्रकाश मे खिल उठे। अथवा कृत्रिम रीति से प्रकाश-अंधकार पर कैसे नियंत्रण किया जाए कि जिससे सोचे मुताबिक निर्धरित समय पर वस्तुओं को बराबर ढग से दिखाया जा सके।

प्रदर्शनी रचने वाले अपनी अंत-स्फूर्ति से अपनी समझ के अनुरूप कला की आत्मा को व्यक्त करने हेतु स्वतत्र होने चाहिए। अमुक निश्चित रीति से तथा जड़ नियमों से प्रदर्शनी नहीं रची जा सकती। एक स्थान पर देखे गए प्रदर्शन के अनुप दूसरी जगह उसी ढंग से प्रदर्शन जमाने का आग्रह रखने वाला व्यक्ति प्रदर्शन की आत्मा छीन लेता है। जो लोग कलाकृति को समझते है और जो सज्जा के सामान्य नियमों से अनजान नहीं होते, वे सभी लोग ऐसी प्रदर्शनियां अवश्य लगा सकते हैं।

●●

धनवानों से

यह लेखकों मैं विशेष रूप से धनवानो के लिए लिख रहा हूं। लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि माध्यम श्रेणी के अथवा गरीब श्रेणी के लोग इसका लाभ ले ही नहीं सकते। यह लेख धनवानों को ध्यान में रखकर इसलिए लिखा गया है कि इसमें दिए गए अधिकतर सुझावों को धनवान ही अमल में ला सकते हैं।

आज हमारे देश में परिस्थिति कुछ ऐसी बन चुकी है कि धनवान लोग अपने छोटे बालकों को आया, नौकर, 'कंपेनियन' या शिक्षक की देखरेख में रखकर यह मान लेते है कि उन्होंने अपने कर्त्तव्य का पालन कर लिया है। आया और नौकर आदि लोग यह समझते है कि उनके मालिक ने अपने जिन बालकों को उनके हवाले किया है, उन बालकों को वे मालिक के बढ़िया बंगले की आल्मारियों पर रखे गए खूबसूरत और कीमती खिलौने दिखाते रहे, जैसी भी बने, मालिक के बालको को खुश रखे; बालकों को अपनी मानी हुई रीति-नीति के हिसाब से भलीभांति तैयार करें, और मालिक के सामने उनके बालको को बढ़िया पुतलों की तरह पेश करते रहें। यही उनके कर्त्तव्य की मर्यादा है।

चूंकि माता-पिता अपने काम-धंधे में या ऐश-आराम मे डूबे रहते हैं, इसलिए वे शायद ही कभी यह सोचते हैं कि आया अथवा नौकर के हाथों उनके बालकों की क्या गत बनती है। और, चूकि आया आदि को बालक की शिक्षा-दिशा का कोई ख्याल होता ही नहीं, इसलिए उनके मन में बालक के बारे में कोई ऊंचे विचार कभी उठते ही नहीं।

अधिकतर माता-पिता और नौकर-चाकर, दोनों, एक ही बात समझते हैं कि बालक जिंदा बने रहें, तो वे भर पाएं। और, सौभाग्यवश

जब तक वे जीएं तब तक स्वस्थ बने रहें, तो और भी अच्छा, और, इससे अच्छी तो कोई बात है ही नहीं कि बिना कोई परेशानी खड़ी किए बालक बढ़िया कपड़ों और गहनों से सज-धजकर घर में पुतलों की तरह चलते-फिरते नजर आते रहे।

आमतौर पर आज स्थिति यह बनी है कि धनवान लोगों के बालक घर के नौकर-चाकरों पर अपना गुस्सा उतारने वाले, अपने दुर्गुणां का प्रदर्शन करने वाले, और मां-बाप को जब भी थोड़ी फुर्सत रहे, उस समय कुछ देर के लिए उनका मनोरंजन करने वाले खिलौने-भर बनकर रह गए हैं। घर में भी ऐसा कोई आदमी शायद ही रहता है कि जिसे बालक के स्वभाव की, और उसकी सार-संभाल की उतनी जानकारी भी हो, जितनी मालिक के घोड़े के सईस को घोड़े के स्वभाव की उतनी जानकारी भी हो, जितनी मालिक के घोड़े के सईस को घोड़े के स्वभाव की और सार-संभाल की होती है। मालिक के तोते की देख-भाल करने वाले नौकर को जितना ज्ञान तोते के स्वभाव का और उसके खान-पान का होता है, और मालिक के बागीचे के माली को बागीचे में लगे पेड-पौधों की परवरिश और रखवाली के नियमों का जितना ज्ञान होता है, उतना ज्ञान परिवार मे बालक-रूपी पौधे की परवरिश का भी किसी को होता हो ! मालिक जब अपनी दुकान पर किसी को नौकर रखते हैं, तो वे इस बा पर ध्यान देते ही हैं कि नौकर में नौकरी की आवश्यक योग्यता है या नहीं। इसी तरह रसोइए को काम देते समय मालकिन भी इस बात का ख्याल रखती है कि वह रसोई बनान्ना जानता है या नहीं। लेकिन घर में बालक के लिए आया अथवा नौकर रखते समय तो सिर्फ इसी बात का ध्यान रखा जाता है कि वह बालक के कपड़ों और गहनों के लोभ से बालक को कोई हानि न पहुंचाए। और ज्यादा-से-ज्यादा यह कि वह बालक को अकेला छोडकर कहीं इधर-उधर घूमने-भटकने निकल जाए ! निःसंदेह आया मे अथवा नौकर मे एक गुण तो होना ही चाहिए, अगर यह गुण उसमें नहीं, तो उसको कोई नौकर ही न रखे, और वह गुण यह है कि नौकर के पास एक ऐसी कला होनी चाहिए कि वह उसको सौंपे गए बालक को एक बढ़िया

गुलाम बना सके जो दूसारो के सहारे जीने वाला बन जाता है वह गुलाम हो न होता है अपग वह है जो अपना काम अपने हाथो करने की अपनी शक्ति को खो बैठा है। धनवाना के बालको के जीवन का आधार वे नौकर ही होते है, जो 'हां, भैया जी' और 'हा, लल्लाजी' कह-कहकर उनको खुश रखा करते हैं। जिस हद तक नौकर बालक की 'हां' मे 'हा' मिलाता रहता है, उस हद तक बालक नौकर का गुलाम बनता जाता है। बालक पराधीन बन जाता है। अगर बालक को कहीं घूमने जाना है, तो वह नौकर के बिना जा ही नहीं सकता। नौकर की मदद के बिना बालक पानी भी नहीं पी सकता। अगर नौकर हाजिर न हो, तो बालक न पानी पी सकता है, और न घूमने ही जा सकता है। उसे मन मसोसकर रह जाना पड़ता है। यह उसकी पूरी पराधीनता है। यही उसकी गुलामी है। जिस हद तक एक आदमी दूसरे आदमी के लिए काम करता रहता है, उस हद तक वह काम करने वाले आदमी का गुलाम बनता रहता है। एक राजा मे, जो राजापने की अपनी ठसक या शान बनाए रखने के लिए अपने हाथों अपने मोजे नही उतारता और एक अपंग मे, जिसमें अपने मोजे खुद उतार लेने की शक्ति ही नही रह गई है, दोनों में, कोई फर्क नहीं है। एक मन से पराधीन बन चुका है, दूसरा शरीर से पराधीन है। एक मन से अपंग है, दूसरा हाथ से अपंग है। इसी तरह जिन बालको के सारे काम नौकर-चाकर ही करते रहते है, वे बालक मन से और शरीर से पराधीन होते है, अपंग और गुलाम होते हैं।

आयाओं और नौकरो की पराधीनता से कुछ-कुद मुक्त होने के बाद जो बालक पढ़ने की उम्र वाले माने जाते हैं, उन पर एक दूसरी राजसत्ता शुरू हो जाती है। बालको को पूरी तरह गुलाम बनाने के ये नए तरीके आयाओं और नौकरों के तरीकों के साथ खूब ताल-मेल रखते है, इन तरीकों घर में शिक्षक रखने का है, जो बालकों को पढ़ाने का काम करता है। आजकल रखने की एक फैशन चल पड़ा है, और उसे एक प्रकार की प्रतिष्ठा भी मिल चुकी है। लेकिन क्या कभी किसी ने सोचा है कि बालक के लिए शिक्षक रख सकते हैं, और उनको इस बात का सतोष बना रहता

है कि बालक शिक्षक से धीरे धीरे कुछ सीखता जाता है दूकान पर मुनीम रखने में, घर में रसोइया रखने में, और बाग-बगीचे के लिए माली रखने में इन सबकी योग्यता का कुछ विचार करना ही पड़ता है। किंतु शिक्षक रखने में विचार करने की क्या आवश्यकता है ? शिक्षक का मतलब है, पढाने वाला और खुद कुछ पढा हुआ। इसके अलावा अगर वह किसी विद्यालय में शिक्षक का काम करता है, तो और भी अच्छा है। शिक्षक की योग्यता इसी में है कि वह शिक्षक कहलाता है, बालक को अपने पास बुलाता-बैठाता है, और खुद जिस तरह पढ़ा होता है, उसी तरह वह बालक को भी पढ़ाता रहता है। इससे अधिक योग्यता की अपेक्षा उससे रखता ही कौन है ? वह बालक को क्या सिखा रहा और क्या नही सिखा रहा, इसकी जानकारी उससे लेता ही कौन है ?सब कोई यही मानते हे कि अगर बालक ने बारहखडी और गिनती सीख ली है, तो वह काफी है। लेकिन कोई इस बात का विचार नहीं करता कि बालक के विकास पर पानी फिर चुका है, बालक का व्यक्तित्व मर चुका है, और वह एक यत्र-सा बन गया है, आज यह दशा हमारे बालकों की है, उनको इस दशा मे से छुडाने के लिए मां-बापों को क्या करना चाहिए, यहां मैं उसी की थोड़ी चर्चा करूगा। मेरे ये विचार कोरे पुस्तकीय विचार नही हैं, बल्कि ये मेरे अनुभवो में से जन्मे हैं, इस बात को मै शुरू मे ही स्पष्ट कर देना चाहता हू। ये विचार सुणव के रूप में हैं, और तीन से छ-सात साल उम्र के उन बालकों के लिए हैं, जो पाठशाला में न जाकर घर में ही रहते हैं।

मेरा पहला सुझाव यह है कि बालकों को नौकरों की गुलामी से मुक्त किया जाए। मतलब यह कि बालको के लिए नौकर रखे ही न जाए। कितु आवश्यकता पड़ने पर बालकों के विकास में उनकी मदद करने के लिए नौकर रखे भी जा सकते हैं, चूंकि मां-बाप खुद सारे दिन बालकों की सार-संभाल नहीं कर पाते है, इसलिए नौकर भले ही रखे जाए। लेकिन नौकरों को यह ठीक-ठीक समझा देना चाहिए कि उनको क्या करना है, और क्या नहीं करना है। यह जरूरी नहीं है नौकर कोई विद्वान् या सुयोग्य व्यक्ति ही हो, किंतु उसके ध्यान में यह बात अच्छी तरह बैठ

जानी चाहिए कि अमुक काम तो उसे करने ही नहीं है। जो काम नौकरो द्वारा नही किए जा सकते अथवा जो नौकरों को करने ही नही हैं, उनको नीचे लिखे अनुसार गिनाया जा सकता है।

1. नौकर वालक को मारे-पीटे नही।

2. नौकर वालक को डराए-धमकाए नहीं।

3 वालक की हाजिरी मे नौकर कोई गंदी बात न कहे, कोई गाली न वके।

4. नौकर वालक को अपमानजनक शब्दों के साथ न बुलाए।

5. नौकर बालक की झूठी और बेमतलब खुशामद न करे।

6 जो काम वालक खुद करना चाहता है, उसमें नौकर उसकी मदद न करे, और बालक के काम में खुद कोई रुकावट न डाले।

7. बालक को अपनी आंखो के सामने खेलने के लिए खुला छोड़ देने के बाद, वालक जो भी खेले, उसमें नौकर कोई बाधा खड़ी न करे।

8. जल्दी के कारण, या वालक ठीक से काम करना जानता नही है, इस कारण, अथवा टूट-फूट के डर से, या बालक के कपड़ों और उसके शरीर को गदा होने से वचाने के विचार से, बालक जो भी काम कर रहा हो उसको बालक के बदले नौकर कभी न करे।

9. यह न मान लिया जाए कि धनवानों के बच्चे तो इसी तरह खेलते हैं। वे प्रायः खिलौनो से ही खेला करते है, गारे-मिट्टी से नही। खेलते समय बालक कोई गलत काम न करते हों, अथवा ऐसा कोई खेल न खेलते हो, जिससे उनके शरीर को भारी नुकसान पहुंचता हो, तो उनको मनपसंद खेल खेलने से रोका न जाए। नौकर इसका पूरा ख्याल रखें।

मेरा दूसरा सुझाव यह है कि बालकों को हर किसी शिक्षक के हाथ मे न सौंपा जाए। असल में छोटे बच्चों को ट्यूशन की कोई आवश्यकता नहीं होती, फिर भी ट्यूशन लगाने की इच्छा रोकी ही न जा सके, तो किसी ऐसे शिक्षक को रखा जाए, जो शिक्षा के विषय में कुद जानता-समझता हो। ऐसे शिक्षक में नीचे लिखे गुण होने ही चाहिए।

1. जो गुण नौकर के लिए आवश्यक हैं, वे सब गुण।

2 बालक को जो भी सिखाना हो सो जबर्दस्ती नहीं वल्कि राजी-मर्जी से सिखाने की वृत्ति।

3. शिक्षक स्वभाव से धीरे-गंभीर हो, खुशामदी नहीं।

4. शिक्षक के सामने सदा यह विचार रहे कि उसका काम मालिक को खुश रखने का नहीं है। उसे बालक को खुश रखना है। बालक के विकास के लिए उनको शिक्षक का काम सौंपा गया है।

5. यदि शिक्षक यह अनुभव करे कि उससे बालक को कोई लाभ नही हो रहा है, तो वह नौकरी छोड़ देने के लिए तत्पर रहे।

आमतौर पर कोई बिरला ही शिक्षक ऐसे गुणो वाला मिलता हे। इसलिए उचित तो यही है कि बालकों को शिक्षक के बिना ही सीखने दिया जाए। कोई चिंता की बात नहीं, अगर ऐसा करने से बालक कुछ कम सीखें। क्योकि इससे उनके विकास का, उनकी आत्मा का नाश तो होगा ही नही।

छोटे बालक खुद ही अपनी उम्र के हिसाब से ज्ञान प्राप्त कर सके, इसके लिए कुछ सुदर और व्यावहारिक योजनाएं हैं। यदि इन योजनाओ पर सावधानी के साथ अमल किया जाए, तो शिक्षक अथवा नौकर की मदद के बिना भी बालक बहुत-कुछ सीख सकता है। वह इतना होशियार बन सकता है। कि उसको देखकर हम अचभे मे डूब जाएं।

इन योजनाओं में से एक योजना मैं यहां दे रहा हूं। यदि इस योजना पर अमल किया जाए, तो इससे बालक आनंदी, स्वस्थ बन सकता है। वह माता-पिता की और नौकर-चाकर की पराधीनता से छुट्टी पा सकता हे। वालक स्वय ही अपनी इंद्रियों का विकास करके अपने मन और अपनी आत्मा का विकास नाना प्रकार से कर सकता है। इस योजना का ब्योरा यो है—

बालक का अपना कमरा

धनवानों के बंगलों में भी बालकों के लिए कोई अलग कमरा रखा नहीं जाता। पूरा बंगला और उसमें सजाया गया सारा फर्नीचर कुछ ऐसे ढग का होता है कि उसमें बालकों के काम भी कोई भी चीज नहीं होती।

घर की सारी चीज बडी उम्र के लोगों के लिए ही होती हे वालको क लिए सिफ कुछ अच्छ-अच्छ खिलान होते ह। ये खिलाने भा ज्यादातर या तो आल्मारी के अदर या आल्मारी के ऊपर ही रख रहते हैं अगर कभी ये वालकों के लिए नीचे रखे भी जाते हैं, तो इनका उपयोग इतनी खबरदारी के साथ करना होता है कि बालक इनसे कुछ सीख ही नही पाते। बालक इन खिलौनों को बहुत ही कम पसंद करते हैं क्योंकि इनसे इनके किसी तरह का कोई आनद प्राप्त नहीं हो पाता। बालक कुछ ही देर में इनसे उकता जाते हैं और उन्हें उठाकर फेंक देते है, अथवा यह जानने के लिए कि उनके अंदर क्या है, वे इनको तोड-फोड़ डालते है। आज बंगलों मं रहने वाले बालको की यही स्थिति है। इसलिए पहली जरूरत तो यह है कि बालकों को एकांत अलग कमरा मिलना चाहिए। इस कमरे में सारी चीजें बालक की उम्र के हिसाब से, उसकी जरूरतों को ध्यान में रखकर, जुटाई जानी चाहिए। इस कमरे का वर्णन कुछ इस तरह किया जा सकता है–

1. कमरा न बहुत बड़ा हो, और न बहुत छोटा हो।

2. कमरे की दीवारें नीले अथवा हल्के हरे रंग से रगी हों।

3. बालक खड़े-खड़े हाथ लगा सकें, इतनी ऊंचाई पर कमरें मे बडे अक्षर के कुछ चित्र लगे हों।

4. फर्श पर नीले लाल रंग की पट्टियों वाली दरियां बिछी हों।

5. कमरे में एक-एक दराज वाली हल्की, छोटी मेजें हो, जिनको बालक खुद उठा सकें और इधर-उधर ले जा सकें। मेजों का ऊपरी हिस्सा समतल हो।

6. जब जी चाहे तब बालक आराम कर सके, ऐसी छोटी खटिया या छोटा पलंग हो, और उस पर साफ-सुथरा बिछौना बिछा हो।

7 एक कोने में हाथ-मुह धोने के लिए पानी की छोटी टंकी हो। पास ही हाथ-मुंह पोंछने के लिए एक छोटा तौलिया हो, और एक छोटे कंधे के साथ दीवार पर एक आईना भी टगा हो।

8. खिड़कियां पर फूल-पौधों वाले छोटे-छोटे गमले रखे हों।

9 पानी का एक टब हो

10. पेड-पाधों में पानी सींचने के लिए एक छोटी झारी हो।

11. बालक के हाथ पहुच सके, इतनी ऊचाई पर दीवारों में खूटिया लगी हों।

12 पानी पीने के लिए एक छोटी मटकी या गगरी हो, और एक हल्का-सा छोटा प्याला या गिलास हो।

बालक की पोशाक

1. जहां तक संभव हो बालक के पहनने के कपडे ढीले-ढाले हो और सामने की तरफ बटन वाले हो।

2. पैरों में बूट और मोजे न हो।

3. सिर पर टोपी या ऐसी कोई चीज न हो।

4. पसद करने लायक पोशाक घुटनों तक की चड्डी या पायजामा, कमीज या कुर्ता। बनियान नहीं। कमीज या कुर्ते की बाहे कुहनी तक रहें।

कमरे में साधन-सामग्री

1. एक पट्टा और उस पर गीली मिट्टी का एक पिंड। पास ही में हाथ धोने के लिए एक डोल या बाल्टी और एक तौलिया। मिट्टी के खिलौने सुखाने के लिए एक पटिया।

2. छोटे-छोटे रूमाल। कुछ ब्रुश और एक छोटी पेटी, कपड़ों को तहाकर रखने के लिए।

3 रबर की छोटी-बड़ी गेंद और लकड़ी के बल्ले।

4. लकड़ी के पहिए अथवा लोहे की पट्टी वाले पहिए और हुक।

5. अलग-अलग धातुओं के और अलग-अलग कीमतों वाले सिक्के।

6. ऊन, सूत और रेशम के नमूने, जो 'सैंपल' के रूप मे मिलते हैं। इनके टुकडे, हर किस्म के दो-दो।

7. चौपड़ नहीं, केवल गोटें।

8. रग-बिरगी चकरिया।

9. छोटे झाडू और छोटे सूप।

10. लट्टू और डोरी।

11 दो चार छोटी काली तख्तिया और खडिया मिट्टी की पेटी

12. चित्रो के अलबम—चित्र हमारे देश के जीवन का परिचय कराने वाले सुंदर और साफ होने चाहिए।

13. स-र-ग-म के सुर निकालने वाले कांच के प्यालो के दो सैट।

14. लकड़ी के घन के 20 टुकड़े।

15. एक घड़ियाल और हथौड़ी।

16. मॉण्टेसरी-पद्धति में काम आने वाली गट्टों की तीन पेटिया।

17. मॉण्टेसरी-पद्धति में काम आने वाला मिनारा, चौडी सीढ़ी और लंबी सीढ़ी।

18. मॉण्टेसरी-पद्धति में काम आने वाले रंगों की पेटी।

ये सारे साधन ऐसे हैं कि यदि बालक को इनके बीच खुला छोड दिया जाए, तो बालक खुद ही अपनी पंसद का साधन लेकर उसके साथ खेलना शुरू करेगा, और इससे बालक अपना विकास खुद ही करता रहेगा। बहुत ही जरूरी हुआ, तो बालक को एकाध बार ही यह समझाना होगा कि इन सब साधनों का उपयोग क्या है, और उसको इनका उपयोग किस तरह करना है। बाद में तो बालक खुद ही सब कुछ कर लेगा। बालक को ये साधन सौंप देने से वह स्वतत्र बनेगा, आनदी बनेगा, स्वस्थ बनेगा और नौकर अथवा आया की गुलामी से उसे छुटकारा मिल जाएगा। वह जिद करना और झगड़ना भूल जाएगा। साधन सब अच्छे होने चाहिए, ऐसे-वैसे नहीं। मॉण्टेसरी-पद्धति के जो साधन व्यवस्थित रूप से बने हो, उन्हीं साधनों का उपयोग किया जाना चाहिए।

●●

अपने पैरों पर खड़े हों !

एक नीति वाक्य है कि सोये हुए सिंह के मुह मे अपने आप शिकार नही आ जाता। इस कथन में बहुत बड़ा सत्य निहित है। ईश्वर उसी की सहायता करता है, जो स्वय अपनी सहायता करता है। एक लंबे अर्से से हम मे पराधीनता की प्रवृत्ति घर कर चुकी है। अपने पैरों पर खड़े होना हम भूल ही चुके हैं। हम सोचते हैं कि हमारे विभाग मे सुधार आ जाए तो अच्छा रहे, हम सोचते हैं कि हमारी गरीबी मिट जाए तो अच्छा रहे, हम सोचते हैं कि हमारा वेतन बढ़ जाए तो अच्छा रहे, हम सोचते हैं कि हमारी तरक्की हो जाए तो अच्छा रहे--पर इन सबके लिए हम स्वय क्या करते है ? अगर कोई दूसरा व्यक्ति इस दिशा में प्रयत्न करे तो करे, बस उसी पर हम आश्रित बने बैठे रहते हैं। इस प्रवृत्ति को हमें छोड देना है और अपने पैरां पर खड़े होना है।

पर खड़े कैसे रहें ? पहली बात पर दूसरे ढग से गौर करना सीखे। बात यह है कि हम स्वाधान हैं ओर हमें स्वाधीन बने रहना है। हमें स्वय अपना विकास करना है, विकास करेंगे तो अपने आप ऊंचे पद पर पहुचेगे। इस तरह से हमें अपने सोच को सवारने, अमल मे लाने की जरूरत है। इससे हममें आत्मविश्वास जागेगा।

तब हम विभाग में सुधार लाने पर विचार करे। विभाग प्रतिभा-सम्पन्न शिक्षकों के लिए है। विभाग की शिकायत है कि उसके पास ऐसे शिक्षक नहीं है। हमें प्रतिभाशाली शिक्षक बनकर विभाग के दु:ख को मिटाना है और उसे वर्तमान मृत स्थिति से उबारना है। प्रतिभा को बाहर से भला कौन लाकर हमे देगा ? कौन खरीदेगा प्रतिभा को ? बढाने के लिए विभाग क्या-क्या प्रयास करे ? ये बातें हमारे अपने हाथ मे हैं। हम सब

मिलकर प्रतिभाशाली व्यक्तियो का समूह बन सके तो बेशक विभाग मे सुधार ला सकेगे। विद्यालय मे अच्छी पढ़ाइ का वातावरण बननाना है यह काम हम करेंगे। परीक्षा के दोष विद्यार्थियों को प्रभावित न करें—यह काम हमीं करेंगे। विद्यालय की गदगी दूर करने के बारे में कार्यनीति हमी बनासयेंगे और हमीं लागू करेंगे। जब शिक्षको का एक विशाल समुदाय नये विचारों को आत्मसात करके उसे विद्यालय मे क्रियान्वित करने पर उतारू होगा तो भला ऐसा मतिमंद विभाग कौन-सा होगा, जो उनके प्रयासो का समर्थन नहीं करेगा ? विभाग तो शिक्षकों का ही है, तभी तो वह उनका है। अगर कोई यह कहे कि विभाग अच्छा नहीं है, तो इसका सीधा-सा अर्थ यही है कि शिक्षक अच्छे नही हैं, एकजुट नहीं हैं, शक्तिवान नही है, प्रतिभा-सम्पन्न नहीं हैं।

अपनी गरीबी को हम मिटा सकते है, पर हमें अपनी शक्ति पर भरोसा तक नही है। क्योकि मूलतः हम में शक्ति है भी नहीं, शक्ति की ऊष्मा तक नही। क्या कोई यह वात मानेगा कि शक्ति-सम्पन्न व्यक्ति बैठा रह सकेगा ?— यह सोच ही गलत है। राज्य के सर्वोच्च अधिकारी को किसलिए अधिक वेतन मिलता है ? कारण स्पष्ट है कि उसमें राज्य-तत्र को संचालित करने की ताकत है। शिक्षाधिकारी को किसलिए ऊंची पगार मिलती है ? इसलिए, कि उसने शिक्षकों से अधिक शक्ति सृजित की है। अगर कोई अधिकारी शक्तिवान सिद्ध नहीं होता तो उसे अपना पद छोडना पडता है, उसको वेतन बद हो जाता है।

हम शक्ति का सचय करे, फिर हमें वेतन की मांग करने की जरूरत नही पड़ेगी। जब तक राज्य को यह लगता है कि अमुक विभाग पिजरापोल जैसा है, तब तक वह उसमें धन खर्च नहीं करता, न उसे ऐसा करना चाहिए लेकिन अगर हम अपनी शक्ति से यह प्रमाणित कर दें कि एकमात्र हमारे विभाग के सुधार से ही दूसरे विभागों में अपव्यय बंद हो जाएगा, तब तो सबको अपनी-अपनी शक्ति के अनुरूप सहयोग देना ही चाहिए।

अभी तक अपने बुद्धि-बल से हमने लोगों में यह बात कहां बिठाई

है कि शिक्षण का काम कठिन है पर महत्त्वपूर्ण है अभी तक हमने यह कहा सिद्ध किया है कि सच्ची शिक्षा से दूषित राज्य-व्यवस्था और मिथ्या उपाधि का अंत आता है ? हमने शिक्षा देकर अच्छे नागरिक कहा तैयार किये है कि उसके परिणामस्वरूप चोरी, हत्या, अपराध आदि का प्रतिशत घटा हो या व्यापारियों की बुद्धि विकसित हुई हो, कलाकार व कारीगर बढे हों और इसके परिणामस्वरूप राज्य की संपत्ति मे अभिवृद्धि हुई हो ?

एक बार हमें ऐसा करके दिखाना है, तब हम देखेंगे कि हम भीख मांगने योग्य रहते हैं या नहीं। हमे एक बार तो यह दिखा ही देना है कि शिक्षकों का ही सबसे अधिक वेतन हो सकता है, कि उन्हीं का दर्जा सबसे ऊंचा हो सकता है, कि एक बार राजा लोग भी शिक्षकों के आगे सिर झुकाते थे !

●●

साधनों की मीमांसा

मॉण्टेसरी पद्धति में किस विषय पर बल अधिक दिया जाए और किस पर कम, यह वता पाना अत्यंत कठिन है। कई लोग कहते हैं कि इस सपूर्ण पद्धति में सवसे अधिक महत्त्वपूर्ण हैं मॉण्टेसरी-सिद्धति के सद्धांत, और सब बातें गौण हैं। यही नहीं, उनके बगैर काम चल सकता है।

मॉण्टेसरी पद्धति के सच्चे उपासक यहां तक कहते हैं कि मॉण्टेसरी-पद्धति, याने मॉण्टेसरी-पद्धति के साधन, इसके उपकरण। इनके बिना मॉण्टेसरी पद्धति असंभव है।

कई सहानुभूति प्रदर्शित करने वाले लोगों का कहना है कि सिद्धातों और साधनों की बात तो ठीक है, लेकिन महत्त्व की बात तो व्यक्तित्व हे। डॉ. मॉण्टेसरी के व्यक्तित्व के विना मॉण्टेसरी के साधन और सिद्धांत कही बेकार पड़े होते। इधर कुछ नासमझ लोग भी हैं जो मानते है कि अच्छी तरह से पढ़ाने मे ही विशेष बात होती है, साधन आदि तो निमित्त मात्र है। कतिपय शिक्षाविदों ने एक संदेह व्यक्त करते हुए टिप्पणी की है कि साधनों को लेकर मॉण्टसरी पद्धति की विजय का जो अनुमान लगाया जा रहा है, यह एक नासमझी ही है। कुछ उदार शिक्षाविद् सभी पक्षो को समान रूप से स्थान देने का आग्रह करते हैं, पर वे सबसे अधिक महत्त्व की चीज अनुकूल वातावरण को यसाने परिस्थिति को गिनते है। कइयो की मान्यता है कि मॉण्टेसरी के साधनों से किंडरगार्टन शाला के साहित्य मे अच्छी-खासी अभिवृद्धि होती है, हालांकि वे साधन किडरगार्टन की तुलना में आकर्षक नहीं है, सृजन-शक्ति और कल्पना-शक्ति के पोपक भी नहीं हैं।

ऐसी मत-विभिन्नता की स्थिति मे हमें मॉण्टेसरी के शैक्षिक उपकरणो

का वास्तविक मूल्याकन करना है। इस पद्धति के सिद्धांत तो निःसदेह इसके प्राण-स्वरूप ही हैं। इनके विना साधन तो केवल जड़ चीज ही है। यही नही, इन सिद्धातों के परिपालन में से ही साधनो की उत्पत्ति होती है। वात को समझने के लिए यों कहा जा सकता है कि जिस प्रकार देह और इंद्रियां प्राण धारण करने, उसे व्यक्त करने के लिए आवश्यक हैं, उसी प्रकार साधन भी सिद्धातो को सफल बनाने के लिए आवश्यक है। मॉण्टेसरी पद्धति का प्राण मॉण्टेसरी द्वारा निर्मित साधनों में समाया हुआ है। देह और प्राण भिन्न-भिन्न होते हुए भी दोनों मे से ऐक्य के अभाव मे जिस तरह मनावीय जीवन के अस्तित्व में कमी आ जाती है, उसी तरह सिद्धांतो और साधनों के बिना मॉण्टेसरी-जीवन कदापि संभव नहीं। अगर हमे मॉण्टेसरी पद्धति की आवश्यकता है तो हमें इसके साधनो की जरूरत होगी ही होगी। डॉ. मॉण्टेसरी लिखति है, 'मान लीजिए कि कभी मे किसी देश में शिक्षा की उच्च अधिकारी बन जाऊ, तव भी जव तक लोग मांग नहीं करेगे तब तक ऊची से ऊची शिक्षा-पद्धति को भी स्वेच्छाचारिता से शुरू नहीं करूंगी। लेकिन अगर जो नतीजे मैंने प्राप्त किये है, शिक्षक भी वहीं नतीजे चाहते हो, तो उन्हें मेरे ही साधन काम में लाने का आग्रह नहीं रखते, तो मैं उनसे मेरे साधन काम मे लाने का आग्रह नही करूंगी—मुझे तो एक ही बात को लेकर एतराज है कि अध्यापक मेरे साधनों मे मनमर्जी से परिवर्तन करके वांछित परिणाम न आने के लिए मेरी पद्धति को जवाबदेह और दोषी न ठहरायें !'

बहुत से लोगों का ख्याल है कि डॉ. मॉण्टेसरी ने जो साधन बनाये है वे अपनी फलदायी तरंग के बल पर ही गढे हैं। इस तरह मानने की लोगों की स्वाभविक आदत बन चली है, क्योकि आज तक शिक्षक का स्तर अधिकांशतः लोगों की तरग पर ही बनता आया है। अब तक लोगों ने सिर्फ यही सोचा है कि बालकों को क्या पढायें और कैसे पढ़ायें—पर हर बार यही बात उनके दिमाग में नही आई कि किसे पढाना है। याने लोगों का ध्यान विषय की तरफ गया है, विषयी अथवा विधेय की तरफ नहीं। विषय का निर्माण करते समय लोगों की दृष्टि संकुचित हो जाती है, क्योंकि वे अपने से तेजस्वी मनुष्य की कल्पना नही कर पाते, अतएव

आज के लोगों स अधिक प्राणवान लाग बनाने का विचार रचमात्र भी उनके दिमाग में नही आता

मनुष्य ने स्वभाववश भावी मनुष्य को अपने जैसा ही बनाना चाहा है और इसी तरह का कदम उठाया है। यही कारण है कि हमारे बीच एक ही गांधी, एक ही टैगोर और एक ही लेनिन या एक ही मैजिनी हैं। ये लोग मनुष्यो द्वारा निर्मित शिक्षण-प्रणाली की जड़ता से निकलकर भागे है, तभी महान् बने हैं या फिर इन लोगो ने स्वयं शुद्ध और सच्ची शिक्षा अर्जित की है, उसी का परिणाम है।

डॉ. मॉण्टेसरी शिक्षा के संबंध में परंपरा की बेड़ियों से मुक्त है। इनकी विचार-सरणि गतानुगतिक रीति की नहीं है। बालकों के लिए इतना शिक्षण तो बहुत जरूरी है, इसके बिना हर्गिज नहीं चलेगा—ऐसे विचारों स प्रेरित होकर जिस तरह आज के शिक्षाविद् पाठ्यक्रम निर्मित करते है, वैसे डॉ. मॉण्टेसरी ने अपने साधन निर्मित नहीं किये। अब तक के शिक्षाविदों ने शिक्षण के लिए जो भी रचना की है या साधन निर्मित किये है या उनको व्यवहार में जाने की पद्धति बनाई है, उन सबके पीछे शिक्षण-विपय को केंद्र में रखा गया है, शिक्षार्थी को याने विधेय को लक्ष्य में नहीं रखा गया है। डॉ. मॉण्टेसरी ने जो साधन बनाये हैं वे केवल विधेय को लक्ष्य में रखकर ही, उनके अनुरूप ही बनाये हैं, याने बालक कैसे सीखते हैं। डॉ. मॉण्टेसरी ने इसका अत्यंत सूक्ष्म अवलोकन किया है, और तब साधन निर्मित किये हैं। इन्होंने बालकों के पास अनेक प्रकार के साधन रखकर देखा है। वहुत सारे साधन बालकों को अनुपयोगी लगे और उन्होंने उन्हे फेंक दिया।

जिन साधनो को बालकों ने अपने आप अपनी शिक्षा के लिए स्वयं-स्फूर्ति से, बिना किसी वाहरी दबाव के या लोभ-लालच के प्रयुक्त किया था, साथ ही जो साधन बालकों को अपनी पढ़ाई के लिए सक्षम प्रतीत हुए हैं और जिनमे उनको अपनी भूल सुधारने की विशेषता मालूम पडी है, उन्ही साधनो को डॉ. मॉण्टेसरी ने बाल-विकास के साधनों के बतौर मान्यता दी है। साधनों की योग्यता-अयोग्यता के निर्णय के लिए मॉण्टेसरी ने दो नियम बनाये हैं। एक यह कि वही साधन शैक्षिक दृष्टि

से उपयोगी कहा जाता है जो अपने आप प्रयोग मे लाने के साथ बालको को शिक्षा दे, साथ ही उस साधन में ऐसी विशेषता होनी चाहिए कि जिससे गलत प्रयोग करने पर बालक को गलती का तत्काल पता लग जाए और वह स्वयं अपनी गलती को सुधार सके। किसी साधन में स्वय भूल को सुधारने की शक्ति है अथवा नही, यह जानना मुश्किल नही है। साधन को काम में लाते ही फौरन पता लग जाता है। मुश्किल है तो मात्र यही, कि उससे बालक को शिक्षण मिलता है या नहीं।

यहा यह बात समझ लेने की है कि जिन साधनों को बालक बार-बार काम मे लाता है, वे शिक्षण देते ही है, स्वतंत्र स्थिति में रहने वाला अथवा सामान्य बालक ऐसा कुछ भी नही करता कि जो उसके विकास में सहयोगी न हो। डॉ. मॉण्टेसरी का ऐसा सिद्धात है कि जिन साधनों को बालक बार-बार उपयोग में लाता है और जिन क्रियाओं के पुनरावर्तन में वह तल्लीन रहता है, वे साधन उसके विकास हेतु पोषक ही है। जिनमें बालक को आनद मिलता है उन्ही का वह पुनरावर्तन करता है। विकास में जो चीज मदद देने वाली होती है, उसी चीज मे बालक को आनद मिलता है। अतः कहना न होगा कि साधनों को प्रयुक्त करने के लिए पुनरावर्तन में विकास समाहित है। इसी पुनरावर्तन से शिक्षण सभव है।

शिक्षण के साधनों की तलाश के सबंध मे डॉ. मॉण्टेसरी ने अपने विधेय का अर्थात् बालक का अनुसरण किया है। बालक की वृत्ति को ओर उसकी जरूरतों को इन्होंने बहुत बारीकी से देखा है और तब साधनो का निर्माण किया है। बालक को किन्हीं छिद्रों मे कुछ पदार्थ डालना पसद आता है—इस बाल-वृत्ति को ध्यान में रखते हुए डॉ. मॉण्टेसरी ने दृश्येन्द्रिय के शिक्षण हेतु गट्टा-पेटी और मीनार आदि उपकरण ढूंढ निकाले हे। छिद्रो में कुछ न कुछ डालने की बाल-वृत्ति में से ऐसा साधन आविष्कृत कर लेना एक अपूर्व बुद्धिमानी है। छिद्रों से संबंधित साधन तो और भी अनेक प्रकार के हो सकते है, फिर इस गट्टा-पेटी तो विशेष रूप से एक जादुई साधन है।

मॉण्टेसरी द्वारा आविष्कृत साधनों के संबंध में एक विचारणीय तथ्य

यह भी है कि इन्होंने इन साधनों को बनाकर जिस भांति प्रकृति मानव को अनेक प्रकार से शिक्षा देती है उसी भाँति मर्यादित परिस्थिति मे तदनुकूल शिक्षण देने की योजना बनाई है। अर्थात् प्रकृति जिस प्रकार मनुष्य को अनुभव कराकर, ठेस लगाकर, स्वयं गलतिया सुधरवा कर ज्ञान देती है, उसी प्रकार मॉण्टेसरी पद्धति बालक को ज्ञान प्रदान करने का प्रबध करती है। यह मान्यता मॉण्टेसरी सिद्धांतों की विरोधी नही।

डॉ. मॉण्टेसरी द्वारा निर्धारित किये गये साधन त्रिविध विकास सिद्ध करते है—मानसिक, नैतिक और शारीरिक। इद्रिय-विकास हेतु ढुंढे गए साधन मात्र इंद्रियों का ही शिक्षण नहीं करते। इद्रिय विकास हेतु व्यवहार मे लाने वाली शक्तियों के पीछे हमेशा एक विचार विद्यमान रहा है और उस विचार की सरणि में मानसिक विकास अपने आप आ जाता है। आगे चलकर यह भी पता लगेगा कि साधनो को काम में लाने नैतिक विकास कैसे संभव है।

एक और विशेषता है डॉ. मॉण्टेसरी के साधनों की। मॉण्टेसरी पद्धति का उद्देश्य मनुष्य को सीधे-सीधे शिक्षित करने का नहीं है, अपितु इसका उद्देश्य मनुष्य की अपनी अंतरात्मा में जो कुछ विद्यमान है उसे यथार्थ रीति से व्यक्त करने की शक्ति देना है। इसका उद्देश्य चित्रकला, सगीत, साहित्य, इतिहास, भूगोल, वनस्पतिशास्त्र आदि सिखाना नहीं है। इनके शिक्षण हेतु साधन भी नहीं बनाये गए। फिर, मॉण्टेसरी पद्धति के द्वारा जो कुछ सीखा जाता है वह पद्धति का प्रदेश नहीं, अपितु पद्धति के परिणाम हैं। यह पद्धति मनुष्य को ज्ञान प्राप्त करने के अथवा अंतःशक्ति व्यक्त करने के औजार देती है। प्रत्येक बालक के जीवन में एक ऐसा क्षण आता है कि जब वह अपने अंतर्मन को व्यक्त करना चाहता है। उस क्षण बालक सफलापूर्वक अपने मन को प्रदर्शित कर सके, इसी के लिए मॉण्टेसरी पद्धति के साधन निर्मित किये गए हैं। अतएव मॉण्टेसरी पद्धति में अनेक प्रकार के विषयों का शिक्षण नहीं किया जाता। यह पद्धति बालक के नेत्रों की शिक्षा करके रूप एवं रंग का रहस्य समझने की शक्ति देती है; कानो की शिक्षा करके संगीत की देवी का मंदिर खोल देती है। इस प्रकार मनुष्य की शक्तियां को विकसित करके उसे स्वयं को

जानने का अवसर देती है माण्टेसरी पद्धति से व्यक्ति सीधे ही चित्रकार या गवया नही बन जाता, वह सीधे कवि, गणितज्ञ या लेखक बन जाता, परतु जीवन की किसी भी दिशा में जाने के लिए इसके द्वारा सरल से सरल मार्ग प्रशस्त हो जाता है। इसीलिए ये साधन मात्र साधन हैं, साध्य नहीं।

मॉण्टेसरी पद्धति के साधनों में आपसी संबंध बहुत महत्त्व का है। एक-एक करके साधनों को काम में लाने का कोई अर्थ नहीं है। संपूर्ण साधन-व्यवस्था को भली-भांति समझना जरूरी है। ये साधन परस्पर एक दूसरे को समझने के लिए कितने उपयोगी हैं, यह बात भी जानने की है।

मॉण्टेसरी पद्धति में इद्रियों का शिक्षण—यह एक विषय चित्रकला शिक्षण, यह दूसरा विषय लेखन-वाचन का शिक्षण, यह तीसरा विषय, यो नहीं है। सपूर्ण पद्धति जैसे एक वृक्ष है। इसके तने में इंद्रियों का शिक्षण है और चित्रकला, लेखन, वाचन आदि शाखा-पत्र तने से जुडे हुए है, लेकिन निकले हें एक ही बीज में से। किसी को भी यह समझने की गलती नहीं करनी चाहिए कि अमुक एक-दो साधनों को लेकर उनको प्रयुक्त करेंगे कि बस बालको में उन साधनों से मिलने वाले लाभ आ जाएंगे। हमें संपूर्ण साधन-समूह को काम में लेने की जरूरत है। अकेला साधन निष्प्राण है। सबों के साथ मिलकर ही वह जीवंत है। भूमिति की आकृतियों को काम में लाने से लेखन और चित्रकला दोनों की दिशा उद्घाटित होती है, लंबी सीढ़ी को काम में लाने से गणित तथा आकार के प्रदेश का मार्ग प्रशस्त होता है; महज हाथ धोने की स्वच्छता का लेखन के साथ सबंध है तथा रंग-पेटिका के ज्ञान का चित्रकला के साथ वास्ता है। मॉण्टेसरी पद्धति में अकेला अक्षर-ज्ञान, अकेली चित्रकला या अकेले सगीत जैसी कोई बात नहीं है। सभी विषयों के संधन बिना मॉण्टेसरी पद्धति का कोई अर्थ नहीं। इस पद्धति की पूर्णता इसके समस्त अंगों की पूर्णता में निहित है। इसी में इसके साधनों की वास्तविक खूबी विद्यमान है। इसलिए यह मॉण्टेसरी पद्धति के साथ क्रमिक हैं। एक पेच के बिना जिस तरह से पूरा सांचा ढीला पड़ जाता है, उसी तरह से किसी एक क्रम को, एकाध सीढ़ी को छोड़ देने से सारा काम बिगड़कर नदी या तालाब

में एक हो जाता है कहने का आशय यह है कि या तो माण्सेरी पद्धति को सपूर्णतया स्वीकार किया जाए या फिर इसे सपूर्णतया त्याग दिया जाए एकन्दा साधनों को काम मे लाने से कोई पाठशाला माण्टेसरी पाठशाला नहीं बन जाती। न ही उससे कोइ लाभ मिल पाता।

उक्त विवेचन मे हमने देखा कि मॉण्टेसरी पद्धति के साधन बालकों की वृत्ति और जरूरत के अनुसार बनाये गए हैं। सोचने की बात यह है कि बालकों की इस वृत्ति और जरूरत को डॉ. मॉण्टेसरी ने कैसे मालूम किया।

हर बालक को सबसे पहले अपने आसपास की दुनिया की जानकारी प्राप्त करने की जरूरत पड़ती है। वह दुनिया में जीना चाहता है, अतः अमुक प्रकार का ज्ञान उसके लिए बहुत जरूरी है, ऐसा उसे प्रतीत होता है। यह ज्ञान संसार में चारों ओर विद्यमान—रूप-रंग, विभिन्न आकार, विभिन्न चिकनी-खुरदरी सतहों, सुगंध-दुर्गंध, स्वादिष्ट-बेस्वाद आदि रूपों में है। यह ज्ञान प्राप्त करने के लिए बालक को सर्वप्रथम इंद्रिय-विकास की शिक्षा मिलनी चाहिए। ऐसे शिक्षण से ही बालक आगे बढ़ सकता है। इसी वजह से इंद्रिय विकास के साधनों का मॉण्टेसरी पद्धति में अत्यत महत्त्वपूर्ण स्थान है।

इन साधनों के दोहरे लाभ हैं। इनके द्वारा बालकों का आवश्यक विकास होता है, साथ ही ये साधन बालकों और पाठशाला में व्यवस्था उत्पन्न करते हैं। जिस चीज में बालकों को आनंद मिलता है, बालक उसमें तल्लीन हो जाते हैं। तल्लीनता में ही व्यवस्था रहती है। साधनों से रहित अथवा अपूर्ण साधनों युक्त पाठशाला में मॉण्टेसरी पद्धति के अनुसार जिस तरह की व्यवस्था ओर नियमन की अपेक्षा है, उसकी आशा नहीं की जा सकती। साधनों की जितनी परिपूर्णता होगी, नियमन के लिए उतनी ही तैयारी समझ लेनी चाहिए। सुनियमन बाहर की चीज नहीं है, न हो सकती है। जो चीज बालक को एकाग्र बनाये, उसी चीज में बालक को सुनियंत्रित, सुनियमित रखने की शक्ति हो सकती है। साधन-रहित मॉण्टेसरी स्कूल, याने अव्यवस्था का स्थान। इससे ज्यादा इसका और कोई अर्थ हो नहीं सकता।

ये साधन कौन-कौन से हैं और कैसे-कैसे होने चाहिए, इस सबध मे आगे सोचेंगे। पर इतनी बात तो ध्यान मे रखनी ही चाहिए कि प्रत्येक साधन पूर्ण होना चाहिए। जिस तरह विज्ञान प्रयोगशाला में उपकरणो की लेशमात्र कमी या अपूर्णता चल नही सकती, उसी तरह मॉण्टेसरी पाठशाला में साधनो की न्यूनता, अपूर्णता या असावधानी चल नही सकती। इसका कारण यह है कि मॉण्टेसरी एक पाठशाला, एक प्रयोगशाला के साथ-साथ शिक्षणशाला है। मॉण्टेसरी का प्रधान उद्देश्य शिक्षणशास्त्र की प्रयोगशाला खड़ी करना है, अतएव त्रुटिपूर्ण आकार वाले, बेडौल माप वाले यास दोष-पूर्ण साधन मॉण्टेसरी पद्धति में नही चल सकते। अगर प्रत्येक साधन सावधानीपूर्वक बना हुआ न हो तो विद्यार्थी के विकास मे विघ्न आता है; अध्यापक भी पद्धति के जिन स्वरूपों को देखना चाहता हे, वह नहीं देख सकता, और जो परिणाम पद्धति के द्वारा सिद्ध हो सकते हैं, वे सिद्ध नही हो सकते।

मॉण्टेसरी पद्धति के साधन किस तरह से प्रयोग में लाये जाएं, इस सबंध में आगे लिखा जाएगा, पर यहां इतना कहना जरूरी है कि जो साधन जिन प्रयोजनों की सिद्धि हेतु बनाये गए हैं, उन्हें की सिद्धि हेतु प्रयुक्त करना चाहिए। जैसा कि ऊपर लिखा गया है इस पद्धति में प्रत्येक साधन किसी विशिष्ट उद्देश्य से, विशिष्ट शिक्षण के लाभ हेतु बनाया गया हे। कोई अमुक साधन बालक अपनी मनमर्जी से, चाहे जिस ढंग से प्रयुक्त नहीं कर सकता। जिस प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए जिस ढग से साधन को इस्तेमाल करना तय किया है उससे भिन्न रीति से इस्तेमाल करना डॉ. मॉण्टेसरी को मान्य नहीं। इस संबंध में किंडरगार्टन वालों का मॉण्टेसरी से मतभेद है। किंडरगार्टन वाले कहते हैं कि इस तरह साधनों के उपयो को विशिष्ट और मर्यादित कर देने से बालक की सृजनशक्ति एव कल्पनाशक्ति पर अंकुश लग जाता है। इसके जवाब में कहा गयसा है कि मॉण्टेसरी के साधनो से जो विशिष्ट लाभ अर्जित किये जा सकते हैं, भले ही बच्चे उन्हे अर्जित करें परंतु उन साधनों के द्वारा उनकी अन्य दिशा में कल्पनाशक्ति और सृजनशक्ति विकसित करने में रुकावट न आनी चाहिए। उल्टे, इससे तो साधन की उपयोगिता में अभिवृद्धि होती है। डॉ.

माण्टसरी इस बात का विरोध करता ह इनकी मान्यना हे कि अमुक एक साधन का बालक एक बार अगर गलत ढग स काम म लने लगगा तो बाद मे उसे सही इस्तेमाल की तरफ लौआ लाना याने साधन के वास्तविक उपयोग का लाभ दे पाना असंभव अथवा कठिन हो जाएगा। इसका यह अर्थ नहीं कि मॉण्टेसरी पद्धति मे सृजनशक्ति और कल्पनाशक्ति के विकास की गुंजाइश नहीं। ऐसा कहा जाता है कि जब बालक किसी भी साधन का दुरुपयोग करे तो पता लगाया जाना चाहिए कि उस समय उस दुरुपयोग के पीछे बालक में विकास की कौन-सी शक्ति काम कर रही हे। बालक की जो सृजन शक्ति अथवा कल्पना शक्ति मॉण्टेसरी पद्धति के साधनों के दुरुपयोग द्वारा प्रकट होती दिखाई दे, उस सृजनशक्ति और कल्पनाशक्ति के स्वरूप को पहचानकर उसे तृप्ति, वेग और विकास मिलने जेसे साधन को दिये जाए, और वे साधन उससे ले लिये जाएं निका बालक सही उपयोग नही कर सका।

मॉण्टेसरी पद्धति के साधन बालकों के चतुर्मुखी विकास का दावा नहीं करते। जो चीजें बाल-जीवन के विकास में सर्वाधिक महत्त्व की है और जिन्हें सिद्ध करने के लिए साधनों की भरपूर कठिनाई थी, वही साधन डॉ. मॉण्टेसरी ने विशेष रूप से सबसे पहले आविष्कृत किये हे। अभी नए साधनो की गुंजाइश है ही, अतः विशिष्ट साधनों के द्वारा अन्य वृत्तियो को तृप्ति देने की बालक को इजाजत देने के बजाय अन्य वृत्तियो की तृप्ति हेतु नए-नए साधन ढूंढ निकालने की जरूरत है। इस तरह से साधनों मे अभिवृद्धि हो सकती है और मूल साधनों का दुरुपयोग रुक जाता है।

इस पद्धति के साधन क्रमिक हैं। किस क्रम से और किस समय बालक के पास साधन रखे जाए, इसका उल्लेख यहां किया गया है; साथ ही यह दिशा-निर्देश किया गया है कि किस तरह साधनों को बालको के समक्ष रखा जाए। साधनों के क्रम के बारे में निर्धारण लंबे समय तक किये गए अनुभवों तथा प्रयोगो का परिणाम है। फिर भी इस क्रम के अधीन रहना जरूरी नहीं। जब तक यह क्रम बाल-मानस के विकास के अनुरूप है तब तक यही क्रम चलेगा। बालक अपने आप हमें बता देगा

जो क्रम रखा गया हे यह यथाथ ह या नही अव तक क प्रयोग स यह तय हा चुका ह कि सामान्यत· बालक का विकास किस क्रम से होता ह। उसके आधार पर बाल-विकास के साधनों को प्रयोग मे लाने का क्रम निर्धारित हुआ है। अतएव इस क्रम को प्रयोग के रूप मे किसी भी जगह काम में लाया जाए तो सिद्धात को क्षति नहीं पहुंचती। हमें यह बात समझ लेनी है कि क्रम किसी तरह का पाठ्यक्रम नहीं है, न ही किसी कक्षा की रचना। एक के बाद एक विकास की स्वाभाविक भूमिका पर चढ़ने के लिए जिन सीढियों की जरूरत है, उसी रूप में साधनों का क्रम रखा गया है। क्रम के स्तर से जाना जा सकता है कि अमुक दर्जे पर खडे बालक का विकास अब किस सीढी से शुरू किया जाए और उसके लिए कौन-सा साधन उसके सामने रखा जाए।

बालकों के सम्मुख साधनों को कैसे रखा जाए, इस सबंध में विस्तृत चर्चा का यह स्थान नहीं है अतः सक्षेप में लिख रहा हू। बालक की मानसिक आयु ज्ञात करके वैसे ही साधन उसके सामने रखे जाने चाहिए। बालक या तो साधन का उपयोग करेगा ही नहीं या उसका यथार्थ उपयोग करके उसे थोड़ी ही देर मे छोड़ देगा, या फिर उसमें इतना तल्लीन हो जाएगा कि उसका पुनरावर्तन शुरू कर देगा। अगर बालक साधन का उपयोग नहीं करे तो सोचने की बात है कि या तो बालक उस साधन के लिए वांछित आयु का नहीं है, या वह उसका उपयोग समझता नहीं, या बालक की उम्र बढ़ जाने से वह उसमें रुचि नहीं ले सकता या फिर वह साधन गलत है। अगर बालक की उम्र साधन के अनुकूल नहीं है तो उसे दूसरा साधन दिया जाए; अगर यो लगे कि बालक उसका उपयोग नहीं समझता तो उसे समझाया जाना चाहिए। अगर वालक की उम्र बढ़ गइ प्रतीत हो तो बड़ी उम्र वालों के लायक साधन दिये जाए, और अगर साधन ही गलत लगे तो उसे हटाना ही उचित होगा। कई बार बालक अपनी शारीरिक अशक्तता की वजह से साधन का उपयोग नही करता, ऐसी स्थिति मे वालक को डॉक्टरी मदद दी जानी जरूरी है। क्रम में या क्रम से बाहर, उसी उम्र में या बड़ी उम्र में अगर वालक तल्लीनतापूर्वक साधनों पर काम करता है और पुनरावर्तन करता जाता है तो उसमें किसी

तरह की वाधा न दी जाए किसी भी क्षण बालक को उत्तेजित करन का कोइ जरूरत नही हे

साधनो को लेकर समय के सदभ म यह बात ध्यान देने की ह कि प्रत्येक साधन के इस्तेमाल में बालक के मानस का एक निश्चित उम्र मे सही समय आता ही है। उस सही समय पर अगर उसे साधन न दिये जाए, और बालक इनका उपयोग न करे तो वह इनसे मिलने वाले लाभो से जीवन भर वंचित रहता है। अमुक समय ही महत्त्व का है। वह समय चला जाता है, तो समझो साधन निरर्थक है। अतएव साधनों की प्रस्तुति की उम्र का ध्यान शिक्षक को करना है। अमुक शक्तियों का अमुक विकास अमुक समय पर उत्तम से उत्तम होता है। यह सर्वोत्तम समय निरर्थक चला जाता है तो फिर विकास अधूरा, बेसुरा और तुच्छ है। साधनों की प्रस्तुति का समय भले ही निश्चित न हो, पर शिक्षक तो उसे ज्ञात कर सकता है। यह अनुभव और प्रयोग का समय है।

उक्त बातों के अलावा साधनों को लेकर दो-एक बातें और ध्यान देने जैसी हैं। मॉण्टेसरी पाठशाला में साधनो को सजाने का विचार उपेक्षणीय नहीं है। अगर उन्हें क्रमवार और श्रेणीवार सजाया जाता है तो व्यवस्था को पोषण मिलता है। उससे काम करते समय काम के अंत में फिर से सजाने में शिक्ष्द्वाक को आसानी रहती है। एक बात और, कि शिक्षक को बालक बनकर तमाम साधन स्वयं काम मे लाने जरूरी हैं। साधनों का परिचय काफी नहीं, इन्हें काम मे लाने की क्रिया का ज्ञान ही काफी नही, शिक्षक को स्वयं बालक की भांति उसी गति एवं वृत्ति से काम में लेकर देखना चाहिए। एक बार नही, बार-बार उसे ऐसा करने से नहीं चूकना चाहिए। जब शिक्षक ऐसा करेगा तभी उसे बालक की अस्पष्ट-सी दृष्टि का अनुमान लग पाएगा और तभी वह साधारण-सी दिखाई देने वाली चीजों में बालक को कितना आनद मिलता है, इस बात की सही कल्पना कर सकेगा।

●●

दैनिक कार्यक्रम

अलबत्ता, मॉण्टेसरी पद्धति और कार्यक्रम दोनों परस्पर विसंवादी हैं। मॉण्टेसरी पद्धति अर्थात् स्व-शिक्षण की पद्धति, स्वतंत्रता और स्वयं-स्फूर्ति की पद्धति। इस पद्धति में निश्चित अभ्यास-क्रम अथवा कार्यक्रम अर्थात्, समय-विभाग-चक्र जैसा कुछ हो ही नहीं सकता। परंतु मॉण्टेसरी पद्धति में कार्य की एक दिशा तो है ही। इंद्रिय-शिक्षण का प्रबध, लेखन-वाचन के साधनों के साधनों की योजना; गणित, संगीत, चित्रकला और बागवानी आदि-आदि विषय इस पद्धति के कार्यक्षेत्र की ओर अंगुलि-निर्देश करते हैं। यद्यपि मॉण्टेसरी पद्धति संपूर्ण एवं समग्र बालजीवन के विकास की पद्धति है फिर भी सामाजिक या संयोगों के कारण यह स्थल एवं काल से तो जुड़ी हुई है ही; अतएव मॉण्टेसरी पाठशालाओं में भी अमुक प्रकार के कार्यो की तथा अमुक समय की मर्यादा स्वतः बंध जाती है। परंतु ये मर्यादाएं जब तक बाल-विकास के लिए घातक नहीं बनतीं या जहां तक इसकी स्वतंत्रता की भावना में विघ्न नहीं डालतीं वहीं वह स्वीकार्य और व्यवहार्य हैं, यह बात समझ लेने योग्य है।

समस्त मॉण्टेसरी पाठशालाएं सर्वांग संपूर्ण नहीं हो सकतीं। किसी पाठशाला में कोई एक खास विशेषता होगी तो किसी पाठशाला में कोई एक न्यूनता भी हो सकती है। फिर भी सभी पाठशालाओं में सिद्धांत का परिपालन तथा उनकी सिद्धि हेतु अनिवार्य साधनों का अस्तित्व तो होना ही चाहिए। साधन जितने दरिद्र होंगे तथा सिद्धांत जितने निर्बल होंगे, इसका तत्त्वदर्शन उतना ही अधूरा होगा।

डॉ. मॉण्टेसरी ने अपने 'मॉण्टेसरी पद्धति' नामक ग्रंथ में एकाध

मॉण्टेसरी पाठ्शाला का दैनिक कायक्रम सूचित किया था उसे नमूने के वतौर यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

इस कार्यक्रम का समय आदि दिशासूचक ही हो सकते हैं, पर उसके पीछे रहने वाली पद्धति में सिद्धांतों की मीमांसा तो अचल ही है, उसी को हमे इस कार्यक्र के पीछे जाकर देखना है, तलाशना है।

किसी भी पाठशाला में दो बातों का निर्णय तो होना ही चाहिए—एक. पाठशाला का समय और दूसरा शिक्षण के विषय। इस दृष्टि से हमें नीचे लिखे कार्यक्रम को समझना है।

यह पाठशाला प्रातः नौ बजे खुलती है और शाम चार बजे बद होती है। बेशक, छोटे बच्चों के लिए यह एक लंबा समय है। डॉ. मॉण्टेसरी ने इतना लंबा समय रखा है, इसके पीछे दो कारण हैं; एक तो मजदूरी पर जाने वाले माता-पिताओं के बच्चों को भटकने और मकान को गंदा करने देने की बजाय पाठशाला में लंबा समय व्यतीत करना कहीं ज्यादा अच्छा होता है, और दूसरी बात यह कि यदि मॉण्टेसरी पद्धति के द्वारा बालक को जीवन-शिक्षण देना इष्ट है तो उसे जीवन की पाठशाला मे अधिक से अधिक समय व्यतीत करना होगा। यह दूसरा कारण अधिक स्थाई और तात्त्विक कारण है। पहला कारण संयोगवश उत्पन्न होने की वजह से सनातन कारण नही है।

डॉ. मॉण्टेसरी का स्पप्ट कहना है कि बालगृह बाल-विकास की वाटिकाए हैं। बालकों को लबे समय तक रखने का कारण द्वितीय प्रयोजन सिद्ध करना है।

अलबत्ता, डॉ. मॉण्टेसरी की मान्यता है कि इतना लंबा समय बीच में आराम किए बिना छोटे बच्चे बिता भी नही सकते। इस पद्धति के सिद्धान्तों के अनुसार चलने वाली पाठशालाओ में श्रम जैसी तो कोई बात ही नही है। क्योंकि जिस काम को करने से बालकों को श्रम लगे, उस वे चाहें जब छोड़ सकते है, यहां नहीं हाथ-पैरो को फैलाकर बैठकर या लेटकर वांछित विश्राम कर सकते हैं। पाठशाला का सारा काम ऐच्छिक होने के कारण बालकों के लिए खेल स्वरूप होता है अतः बालकों को श्रम

नही पड़ता पढ़ने और खेलने में कोइ अतर नहीं रखे जान कारण बालका को शायद ही श्रम लगता हो ! इन सबके बावजूद डॉ. मॉण्टेसरी ने इन पाठशालाओं मे छोटे बच्चों के सोने की खास जगह निर्देशित की है। आखिर खेल भी समाप्त हो हैं और शारीरिक विराम की भी जरूरत पडती है अत छोटे बच्चों के लिए सोने की व्यवस्था अनिवार्य है।

पाठशाला की लबी अवधि में भोजन का काम भी आना जरूरी है। जो पाठशालाएं तीन और चार वर्ष की उम्र के छोटे बच्चों के शारीरिक विकास मे सलग्न हैं उनमें दिन के एकाध प्रहर की भोजन की व्यवस्था करना शैक्षिक दृष्टि से काफी महत्त्वपूर्ण है। इस काम में बालकों का जो भी समय व्यतीत होता है उसका पूर्ण सदुपयोग होता है, इसमें सदेह नहीं। '1923 में देखी गई मॉण्टेसरी पाठशालाएं' शीर्षक पुस्तक में इटली की अनेक ऐसी पाठशालाओं का वर्णन है। उससे इन पाठशालाओं के समय विभाग-चक्र तथा कार्यक्रम की भिन्न-भिन्न दिशाए ज्ञात की जा सकती हैं।

यहां डॉ. मॉण्टेसरी की पुस्तक मे प्रकाशित समय विभाजन चक्र प्रस्तुत है। 9 से 10 बजे :

1. बालको का आगमन

2. नमस्कार, अभिवादन आदि विधि

3. शरीर एव कपड़ों की स्वच्छता ज्ञात करना

4. व्यवहार के दैनिक काम—धोना, मसलना आदि

5. कपड़े बदलना

6 पूरे कमरे की साफ-सफाई सुनिश्चित करना

7. वार्तालाप : बालकों ने गत दिवस क्या-क्या किया और क्या-क्या घटनाए घटित हुई, उनके बारे में बातचीत करना

8. धार्मिक क्रियाएं

इतनी सारी क्रियाओं के लिए 9 से 10 बजे तक का समय रखा गया है। यह पूरे साठ मिनट का समय है। प्रत्येक बालक अपनी शक्ति—सार्थ्य के अनुसार गति करता है अत सामन्यतया इस पहले घटे मे इतना काम

उक्त क्रम सेसहज ही हो सके,ऐसी अपेक्षा है।

इस पहले घंटे में निर्धारित किए गए कार्य पर विचार करें तो लगेगा कि डॉ. मॉण्टेसरी अपनी पाठशाला में सबसे पहले सामाजिक जीवन से जुड़ा हुआ काम करना पसंद करती हैं। वे कहती हैं कि बालक को सामाजिक जीवन के लिए तैयार करने के बाद ही उसे अन्य प्रकार की शिक्षा दी जा सकती है तथा बालक को ऐसी सामाजिक शिक्षा देने के लिए हमें अनेक वस्तुओं की तरफ बालक का ध्यान आकृष्ट करना होगा। अभिवादन एक सामाजिक व्यवहार का अंग है अतः डॉ. मॉण्टेसरी इस तथ्य को बालक के समक्ष पाठशाला में प्रवेश करने के साथ ही प्रस्तुत करती हैं।

डॉ. मॉण्ण्टेसरी लिखती हैं कि बालक ज्योंही पाठशाला में आते है अर्थात् आने के साथ ही उनके शरीर एवं वस्त्रों की स्वच्छता के बारे मे पूछताछ व देखभाल की जानी चाहिए। यथासंभव स्वच्छता के बारे मे पूछताछ व देखभाल की जानी चाहिए। यथासंभव स्वच्छता की देखभाल का काम मां के सामने चलता है, हालांकि बालकों की माताओं को उस बारे में सीधे-सीधे कुछ भी नहीं कहा जाता। इस जाच में हम हाथ, नाखून, गर्दन, कान, चेहरा और दांत की देखभाल करते हैं। बाल भी देखते हैं कि वे स्वच्छ हैं या नहीं। बालक के कपड़े फटे हुए, मैले या बटन रहित हों अथवा उनके जूते मैलें हों तो हम उस ओर बालक का ध्यान खीचते हैं। इस तरह की जांच करते रहने से धीरे-धीरे बालक स्वयं अपनी जांच करने लगते हैं और अपने शरीर शरीर व कपड़ों की स्वच्छता में रुचि लेने लगते हैं।

पाठशाला मे ही जल, साबुन, टूथब्रुश, तौलिया, पाउडर आदि स्वच्छता की सभी जरूरी चीजें रखी जाती हैं।

यहां बालक अपने हाथ धोना तथा नाखून साफ करना सीखते हैं। उन्हें ध्यान से अपनी आंखें और कान धोना सिखाया जाता है। उन्हें दातून करना तथा मुंह कैसे धोया जाए, यह भी सिखाया जाता है। कभी-कभी उन्हें नहलाया भी जाता है। कटि स्नान तो वे जब चाहें तभी कर सकते

ह। शरीर के किन-किन अगा को कैसे-कैसे, किन-किन साधना से स्वच्छ रखा जाए, यह बात उन्हें भलीभाति बताई जाती है। बड़े बालकों को छोटों की सहायता करने को प्रोत्साहित किया जाता है। इस तरह छोटे बच्चे जल्दी से जल्दी स्वाधीन बन जाएं ऐसा प्रबध किया जाता है।

यह काम हो जाने के पश्चात् बालक गृह-व्यवहार के काम हाथ में लेते हैं। शुरू-शुरू में तो वे काम करने के लिए गले में कपड़ा बांधते हैं। छोटे बालक इस काम को आसानी से सीख जाते हैं या फिर बड़े बालक उन्हें काम में मदद करते है। बालक कमरे में जाते हैं, जहां कहीं कचरा, गदगी या बिखरा हुआ हो, उसे देख कर साफ-सफाई करते हैं। साथ रहने वाला शिक्षक उन्हें बताता जाता है कि किन-किन साधनों से किन पदार्थो को साफ किया जाए अर्थात् वे उन्हें डस्टर, छोटी झाड़ू-बुहारियो-सूप आदि का उपयोग बताते हैं। कभी-कभी किसी कोने-कचोने मे लगा कोई जाला दिखाकर बालको को स्वच्दता की बात गहराई से बताई जाती है। जब बालक सारा काम अपने आप करने लग जाते हैं तब एक सुंदर दृश्य दिखाई देने लगता है। स्वतन्त्रता से अपने आप बालक काम करने लगते हैं। तो काम कम समय में ही पूरा हो जाता है।

स्वच्छता का काम पूरा हो जाने पर शिक्षक बालको को अपने शरीर पर नियंत्रण करना तथा संतुलित रखना सिखाता है। वह उन्हें पालथी मारकर, हाथ वांधे या पास की टेबिल पर रखे सीधे और शांतिपूर्वक केसे बैठना चाहिए यह बात बताता है। तब उन्हें बिन खटखट किए खड़े होना, बैठना, ठाठ से बोलना, बाहर जाना या आना, एक दूसरे को नमस्कार यसा सलाम करना, तरह-तरह की वस्तुआ को संभालकर उठाना, एक स्थान से दूसरे स्थान तक लाना-ले जाना, एक-दूसरे से चीजें सलीके से लेना-देना सिखाता है।

शिक्षक न किसी बालक को धमकाता ह. न उसकी गलती निकालता हे, अपितु वह धैर्यपूर्वक स्वयं करके उन्हें बताता है। जव वच्चे उनके बताए अनुसार काम करने लगते हैं तो उनका उत्साह उनके अवलोकन की आदत और रुचि को बढ़ाने के लिए कभी किसी सुंदर रीति

स चलन वाल बालक की तरफ कभी स्वच्छ टेबिल कमरे की तरफ या कभा शात से वठे बालको की तरफ, तो कभी सभ्यता से विनयपूर्वक नमस्कार करने वाले बालक की तरफ वह प्रसंगोपात्त ध्यान आकर्षित करता है।

जव शिक्षक यह काम कर चुकता है या जब प्रोत्साहन दे चुकता हे तो वह बालकों को अपने साथ बातचीत करने के लिए निमंत्रित करता हे। बालकों के साथ उसकी अनेक विषयों पर बातचीत होती है कि कल क्या खाया-पीया था, क्या-क्या खेल खेल थे, किन-किन से हिले-मिले थे, माता-पिता की सेवा-टहल की थी, घर के काम में कहां कितना भाग लिया था, नया-नया क्या देखा-जाना था आदि-आदि।

शिक्षक इस बात का ध्यान रखता है कि वह बालकों से उनके घर की या निजी बातें न पूछें। वह उनसे पूछता है कि तुमने यहां जो खेल खेले थे, उनके बारे में घर पर माता-पिता को बताया अथवा नहीं। तुमने माता-पिता के काम मे मदद दी अथवा नही तुमको जो-जो मित्र रास्ते मे मिले, उनको नमस्कार किया अथवा नहीं। ज्यादातर तो सोमवार को वार्तालाप कुछ लबा चलता है। बीच में छुट्टी का दिन हो से बालको को कहने की बातें ज्यादा होती हैं और शिक्षक को भी अधिक पूछना होता हे। छुट्टी के दिन वे कहा-कहा घूमने गए, न खाने जैसी क्या चीजे खाने मे आई, जिससे वीमार पड़े। ऐसे-ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं। बालक ने यदि न खाने जैसी कोई चीज खाई हो और बीमार पड़ा हो, अथवा न करने योग्य काम किया हो तो शिक्षक उसे आग्रहपूर्वक फिर से वैसा न करने की सलाह देता है। इस प्रकार वार्तालाप बहुत उपयोगी और रोचक बन जाता है। वार्तालाप से भाषा की शुद्धि बढती है और यह भी पता चलता है कि कौन-से विषय छोड़ देने चाहिए। इस तरह की बातों से बच्चे यह बात जान जाते है कि समाज में किस तरह बात की जानी चाहिए। बातचीत करने से ही बच्चों की वर्णन करने की शक्ति का विकास होता है।

वार्तालाप के कार्यक्रम के बाद दूसरा काम शुरू होना है। शेष काम

इस प्रकार हैं

10 से 11 बौद्धिक क्रियाएं अर्थात् खेल;

खेलों के बीच-बीच बालकों के लिए आराम के थोड़े-थोड़े अंतराल आते हैं। इसी अवधि में इंद्रियों के खेल तथा संज्ञा शिक्षण के खेल चलते हैं।

11 से 11.30 सादी कसरतें;

चलना, कवायद करना, नमस्कार करना, चीजों को हिफाजत के साथ सूखने रखना; शरीर का संतुलन बनाए रखना।

10.30 से 12 भोजन और छोटी प्रार्थना

12 से 1 मुक्त खेल

1 से 2 यथा संभव खुले मैदान में प्रेरित खेल।

इस अवधि मे बड़े लड़के साफ-सफाई करते है और चीजों को जमाते हैं। स्वच्छता की साधारण जांच और फिर वार्तालाप

2 से 3 हाथ से मेहनत के काम;

मिट्टी का काम आदि।

3 से 4 सामूहिक कसरतें और गीत;

यथासंभव खुली हवा में। प्राणियों और वनस्पतियो की देखभाल।

●●

हाथ की मेहनत

हाथ के काम और हाथ के व्यायाम में अतर होता है। हाथ के व्यायाम का उद्देश्य हाथ को बलवान बनाना है जबकि हस्त उद्योग समाज के लिए उपयोगी अमुक कार्य सिद्ध करता है। हस्त-व्यायाम से व्यक्ति के विकास में मदद मिलती है जबकि हस्त-उद्योग से पूरे ससार को लाभ मिलता है। यद्यपि एक तरह इन दोनो का परस्पर निकट का संबंध है, क्योंकि व्यायाम से सधे हुए हाथ ही सार्थक काम कर सकते हैं।

डॉ. मॉण्टेसरी लिखती है—'कुछ अनुभव हासिल कर लेने के बाद फ्रॉबेल के द्वारा गृहीत हस्त-कला की विधि को छोड़ देना मुझे समझदारी भरा कदम लगा। कारण यह है कि बालक की आंखें बचपन में परिपक्व नहीं होती अतः शरीरविज्ञान की दृष्टि से सीने-गूंथने या बुनने का काम हानिकर है। इस काम से दृश्येंद्रिय को श्रम पडता है तथा परिणामतः आंखों को नुकसान पहुंचता है। फ्रॉबेल के अन्य अनेक खेल, यथा—कागज काटना आदि हाथों को व्यायाम देते है। उनमें हाथ का काम अर्थात् कारीगरी जैसा कुछ नहीं होता।

'फिर भी फ्रॉबेल द्वारा संयोजित खेलों में सबसे उचित खेल मिट्टी का काम है। इसमें बालक माटी के द्वारा अमुक-अमुक वस्तुएं बनाते हैं, तथापि प्रकृति स्वतंत्रता सिद्धांत का अनुसरण करते हुए मैंने बालक के हाथ में माटी सौंपना उचित ही समझा। मैंने उन्हें ऐसा कुछ नहीं कहा कि वे अन्य वस्तुएं देखें और माटी से वैसे अथवा अन्य उपयोगी पदार्थ बनाएं। अनुभव से ज्ञात हुआ कि माटी के काम से बालक के व्यक्तिगत स्वयं-स्फुरित प्रदर्शनों को देखा जा सकता है और उसका उपयोग बाल-मन के अध्ययन के निमित्त किया जा सकता है। पर माटी का काम शिक्षण

नहीं देता।

'ऐसे में मैंने प्रो. रेंडोन द्वारा स्थापित स्कूल ऑव् एज्युकेटिव आर्ट मे जो मनोरंजक खेल दाखिल किये गए हैं उन्हे बालगृह मे प्रयुक्त करने का निश्चय किया। उक्त पाठशाला का उद्देश्य युवकों को शहरी जीवन एव सस्कारी जीवन की शिक्षा देता है। दूसरों की वस्तुओ—मकानों, मूर्तियों, स्मृति-स्तंभों आदि की देखभाल करना तथा उन्हें सम्मान देना प्रत्येक शहरी व्यक्ति का कर्त्तव्य है। इस दायित्व का ज्ञान उक्त पाठशाला में भांति-भांति के हस्त-उद्योग सिखा कर कराया जाता है। मुझे इस पाठशाला के उद्देश्य और कार्य-प्रक्रिया पसंद आई। इसका कारण यह था कि मेरे बालगृह का प्राथमिक उद्देश्य भी तो यही था कि बालक अपने घरो की दीवारों की तथा पास-पड़ोस के वातावराण की किस तरह देखभाल करें तथा उसकी इज्जत करें।

'प्रो॰ रेंडोन की दृढ़ मान्यता थी कि शहरी जीवन के कोरे सिद्धातो को रटाने अथवा बालकों से नीति वाक्य का उचारा कराने से शहरी जीवन का गठन नही किया जा सकता शहरी जीवन तो शिक्षा से उद्भूत होना चाहिए धूल या उपयोगी पदार्थो विशेष रूप से मूर्तियो, स्मृति-स्तंभों एव ऐतिहासिक भवनों आदि का सम्मान करना चाहिए। यह दृष्टि कला के शिक्षा से पैदा की जा सकती है।

'उक्त विशाल प्रयोजन से प्रो॰ रेंडोन ने रोम मे यह विद्यालय स्थापित किया था और वहा उन्होंने विशेष रूप से इटली के एक प्राचीन उद्योग कुम्हारगिरी को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया था।'इतिहास, पुरातत्त्व, शोध तथा कला की दृष्टि से देखे तो माटी के बर्तनों का महत्त्व ऐसा-वैसा नहीं। मनुष्य ने अग्नि की खोज करके जब इसका उपयोग किया, तब उसके साथ ही साथ माटी के बर्तनों की शोध हुई। वस्तुतः मनुष्य ने अपना पहला भोजन माटी के इन बर्तनों में ही पकाया होगा।

'मिट्टी के उद्योग में पूर्णता किस प्रकार आती रही, इसका इतिहास हमारी प्रारंभिक दशा में से विकसित दशा की ओर प्रयास का इतिहास है। नैतिक दृष्टि से भी उसकी मूल्यवत्ता है। पुरातन काल में कौटुंबिक जीवन

का सूचक चिह्न हड्डा तथा सामाजिक जीवन का चिह्न कुल्हाडी माना जाता था। दव मदिरो तथा श्मशान भूमि म भी य दा चीजे धार्मिक चिह्न के बतौर देखने में आती हैं।

'जैसे-जैसे लोग सभ्यता और सस्कृति में आगे बढ़ने जाते हैं, वैसे-वैसे वे अपनी कला एवं सौंदर्य विपयक भावना को व्यक्त करते जाते है। इजिप्ट, ग्रीस तथा इस्टुकन के मिट्टी के बर्तनों से इस बात के प्रमाण मिलते हैं। मनुप्य के बढ़ते जाते विकास के साथ ही बर्तनो की उत्पत्ति, पूर्णता तथा विविधता चलती आई है। बर्तनों के इतिहास में मानव जाति का इतिहास समाया हुआ है। बर्तनो की उपयोगिता के साथ ही साथ इनकी यह एक विशेपता है कि इनके आकारों में अनंत विविधता एवं शृंगार कर पाना संभव है। इस नाते व्यक्ति की प्रतिभा को विकसित होने की पर्याप्त गुंजाइश रहती है।

'एक बार शिक्षक से बर्तन बनाने का तरीका जान लेने के बाद प्रत्येक व्यक्ति अपनी सौंदर्य दृष्टि से मनपसंद आकार बना लेंगे। यह वैयक्तिक कला-सर्जना का काम है। रेंडोन के विद्यालय में तो इसके साथ-साथ कुम्हार के चाक का काम भी सिखाया जाता है।

'इस पाठशाला में छोटी-छोटी ईटें बनाना तथा उन्हे भट्टी मे पकाना भी सिखाया जाता है। बालकों को वहां ईंट व चूने से छोटी दीवारें बनाना भी सिखाया जाता है। शुरुआत मे बालक ईटें पर ईटे रखकर उनकी दीवार बनाते हैं, फिर तो वे सचमुच के मकान बनाना सीख जाते है वे फावड़े-कुदाली से नींव खोदकर बगल की दीवार बनाते है। नमूने के इन छोटे घरों में रखकर खिडकी-दरवाजे लगाते हैं। वे खपरैल भी बना लेते हैं और मकान को खपरैल से आच्छादित कर देते हैं।

'मैंने अपने बालगृह में ऐसे हस्त-व्यायाम की शुरुआत की। दो-तीन पाठ बताये कि बालक उत्साहपूर्वक बर्तन लगे। अपनी बनाई हुई चीजों को वे बहुत संभाल कर रखते हैं। मिट्टी से वे छोटी-छोटी चीजें, यथा—फल, अंडे आदि बनाते हैं और उन्हें बनाए बर्तनो में संभाल कर रखते है। लाल-रग का 'वाज' (Vase) और उसमे सफेद अंडे। यह

वालको की प्रारभिक सजावट है इसके बाद तरह तरह क वाजो का बनावट शुरू हुइ

'पाच-छः वर्ष की उम्र मे कुम्हार के चाक का काम शुरू हो गया। फिर तो बालको ने मनपसंद की चीजें बनाई। स्वयं उगाए गए एक पोधे की बगल में अपनी मेहनत से एक छोटा-सा घर वनाया।

'अतः कहना ना होगा कि मानव जाति की प्रगति का इतिहास बाल-जीवन मे मूर्त होता है। आदिम मनुष्य की तरह वे खेती करते है। आराम के लिए मकान बनाते हैं तथा भूख मिटाने के लिए वर्तन बनाकर उनमें भोजन पकाते हैं।

●●

संग्रहालय

शाला में कलात्मक वातावरण की रचना करने के लिए अमुक सीमा तक संग्रहालयों की आवश्यकता रहती है। जो संग्रहालय बहुत मूल्य वस्तुओं को मात्र संगृहीत करने के लिए है उनकी अलग तरह की महत्ता है। उनका उपयोग शोध के निमित्त ज्यादा रहता है। उनकी रचना-दृष्टि कला-प्रधान की अपेक्षा उपयोग-प्रधान अधिक होती है। जो बिशाल सग्रहालय हमारे देखने मे आते हैं वे निसर्ग से एकत्रित किए गए स्मृति के वर्गीकृत समूहो को रखने के स्थल मात्र है। वर्गीकरण वैज्ञानिक दृष्टि का आधार-स्वरूप होता है। कलात्मक दृष्टि के विकास के लिए इसका अभाव चल नहीं सकता। लेकिन वर्गीकरण की वजह से अटका हुआ संग्रह कला की दृष्टि नहीं देता। संग्रहालय मानव-बुद्धि को चकित कर देते है; वहां रखी हुई सामग्री का विशेष अध्येता उसके माध्यम से ज्ञान अर्जित करता है; लेकिन कला-रसिकता का पोषण वहां नहीं होता। उससे कला-सर्जन की प्रेरणा कम मिलती है। इसलिए संग्रहालय के पीछे की आज की दृष्टि कला-शिक्षण की दृष्टि से थोड़ी-बहुत विशाल व विशुद्ध होनी चाहिए।

शाला के साथ रखा हुआ संग्रहालय न होकर कला-मंदिर बनना चाहिए। अर्थात् प्रकृति में से प्राप्त होने वाली सर्व-समृद्धि जिस तरह प्रकृति में अमुक व्यवस्था से संजोई हुई होने के कारण प्रकृति को मनोहर व आनंदमयी बनाती है, उसी तरह इस समृद्धि के बीच आकर घूमने वाले आलकों के लिए भी वह आनंदमयी और मनोहर होनी चाहिए। अतः सग्रहणीय वस्तुओं के चयन के साथ उसकी रचना का विवेक अत्यावश्यक है।

इस विवेक से पहले संग्रह-योग्य वस्तु के चयन का विवेक भी इतना ही आवश्यक है। जो भी मिल जाए, उसी को उठा लाना न संग्रहालय है, न कला-मदिर। जो वस्तुएं बालकों की कलात्मक भूख का पोषण करें वे वस्तुए ही इस संग्रहालय में हो सकती हैं। कला के मुख्य अंग चित्र, संगीत, स्थापत्य, शिल्प और नृत्य है। इन अंगों के कई उपाग हैं। इन उपांगों के विकास में अगणित वस्तुओं को इकट्ठा करके रख देने से संग्रहालय या कला-मदिर नहीं बनता। प्रेरणात्मक वातावरण के लिए इस संग्रहालय मे मात्र बाजारू और नकली माल का भी स्थान नहीं है। यंत्र द्वारा निर्मित अर्थात् जिसमे कलाकार की मूल आत्मा नहीं है, ऐसा संग्रह निष्प्राण सिद्ध होगा। मूलभूत कलाओं की सुंदर कृतियां संग्रहालय में शोभा देती है अर्थात् संग्रहकर्ता व्यक्ति का कला-दृष्टि बिंब उच्च होना चाहिए। अत सौ नकली चीजें इकट्ठी करने के बजाय एक असली व उत्तम कारीगरी का नमूना काफी है। जिस तरह मेले मे बहुत सारी चीजें देख लेने पर बालकों की कला-दृष्टि प्रधान हो जाती है, उसी तरह सग्रहालयों में रखी ढेर सारी चीजें सिर्फ कला-वृत्ति की प्रेरणा के बजाय कला-सृष्टि की भोगेच्छा को जगाती है। मेले में या दुकान में एकत्रित की गई कलाकृतियां भी जिस तरह मन को एकत्रित करने के बजाय विकीर्ण करती हैं, उसी तरह सग्रहालायों में भी होता है। यह देखूं या वह देखूं, मन इसी मे उलझा रहता है और हजारो चीजों पर मात्र नजर डालने से वह थक जाता है। हजारो वस्तुओं का ज्ञान एक साथ टकराने से दिमाग उसके भार के भय से उकता जाता हैं और मात्र संग्रहालय देखने का सतोष मिलता है। पर वह बहुत कम ज्ञान और लगभग नहीं जैसी कला की दृष्टि दिखाता है। शाला का संग्रह स्थान इसीलिए थोड़ी-सी ही उत्तमोत्तम मूलभूत कलाओं की कृतियों का अवकाश देता है और उतना ही अवकाश कला का सच्चा वातावरण रूप बनता है।

संग्रहालय कला-मदिर होने चाहिए। इसका यह अर्थ है कि इसे सजाने मे कलात्मकता की दृष्टि चाहिए। इस सज्जा में वस्तुओं के कद, रग, रूप आदि का ध्यान रहना चाहिए। अवकाश को किस तरह भरा

जाए इसका भी पूरा ध्यान कला-मंदिर के रचनाकार को रखना चाहिए अवकाश जैसे सौंदर्य है वैसे ही अमुक रीति से उसे भरा जाए तो वह सौंदर्य बन जाता है। कला-मदिर की रचना करने मे वस्तुओं की अपेक्षा अवकाश को भरना अधिक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

कला-मदिर की रचना करने वाले को भवन की लंबाई, चौड़ाई, मोटाई ध्यान में रखते हुए उसमें रखी जाने वाली कलाकृतियों के कद पर विचार करना चाहिए। इसके अलावा अवकाश को कि र प्रकार प्रकाशित किया जाए अर्थात् रगीन बनाया जाए यह बात भी कला-मंदिर के रचनाकार को ध्यान होनी चाहिए। बडा अवकाश अमुक रग से छोटा बनता है, जबकि छोटा अवकाश अमुक रंग के वड़ा वन जाता है। रंग की रेखाओं से अवकाश छोटा, बड़ा और सुंदर बनता है। कला-मंदिर का भवन एक बार अमुक तरह का बन जाने के बाद अथवा हमें मिलने के बाद, उसमें फेरफार पर पाना असंभव होता है तब उस भवन की दीवारें और छत, रग और चांदनी से कैसे शोभायमान की जाएं, उस पर ही हमें विचार करना शेष रहता है। अतएव अवकाश के रग कैसे चुनें, इसका शिक्षक को अच्छा ज्ञान होना चाहिए।

छत को कपडों की चांदनी से या नक्काशीदार लकड़ी के पेनलों के सजाना चाहिए। प्राचीन काल के दीवानखाने लकडी की खुदाई की हुई छतों से सजे हुए देखने को मिलते हैं। गुंबदो में चित्रित किए गए सुशोभित छत का काम करते हैं। कपड़े की या ऐसी छतो मे कपड़े पर चित्रांकन की जरूरत पडती है। छत जमीन से कितनी ऊंची है। उस पर की चांदनी पर चित्रों का छोटा या बडा होना अवलबित है। ऊंची छत बड़े चित्रों से शोभायमान होती है, जबकि नीची छत मे छोटे चित्र अच्छे लगते हैं। दीवार के ऊपरी भाग में फ्रेस्को (दीवार पर चित्रित चित्र) या कि लटकाने वाले चित्रो की शोभा मेल खाती है।

हमारे यहा फ्रेस्को का काम ज्यादा विकसित नहीं हो पाया। उसे शाला के संग्रहालयो में स्थान देना चाहिए। फ्रेस्को लंबे समय तक टिकने वाले भित्तिचित्र है। फ्रेस्को के ही साथ अथवा जहा फ्रेस्को न हो वहा

दीवारो के ऊपरी भाग मे छवि चित्र टांगे जाने चाहिए। संग्रहालय बच्चो के लिए हो तव भी जिस तरह छवि चित्र टागे जाने चाहिए। संग्रहालय बच्चो के लिए हो तब भी जिस तरह छवि चित्र नीचे हों, उसी तरह ऊपर भी होने चाहिए दूर से देखे जाने वाले छवि चित्र हमेशा बडे होने चाहिए और उनके भीतर का विवरण भी आकार मे बडा हो। ऐसे ही चित्र सुनने चाहिए। ऊपर टाडो जाने वाले चित्रों को दीवार के समानातर टांगना चाहिए, साथ ही वे दीवार के साथ कोण बनाएं, इस तरह टागी जाए।

कला-मंदिर की निचली दीवार पर दीवार के समानांतर सुंदर चित्रो वाली छवियां अथवा फूल या कि पक्षियों के पेनल लगाने चाहिए। ये छवियां और पेनल उसी भाग मे आएं जो खाली हा। मंदिर के कोनो मे कारीगरी वाले बर्तन उतरते क्रम में रखे जाएं तो वहुत शोभा देंगे। किसी न किसी तरह का कोने का शृगार कोनो के लिए चाहिए ही। मंदिर के मध्य भाग को कैसे सजाया जाए, मदिर की लबाई, चौडाई ओर आजू-बाज़ू में जो सजावट की गई है, उस पर आधारित है। बहुत लबे, चौडे और ऊंचे कमरे मे किसी भांति के मंडप या स्तूपाकार अधिक शोभा देंगे। छोटे मंदिरों में नक्काशीदार बाजोट (तख्ते) और नितात छोटे मंदिर में स्वस्तिक की रांगोली मदिर की भूमिका के मध्य भाग की शोभा बढाएगी।

संग्रहालय अथवा कला-मंदिर के लिए इकट्ठी की गई वस्तुओ को उनके अनुरूप बनाई गई अलमारियों अथवा छज्जों अथवा आसनों पर सजाना चाहिए। इसके अलावा भी मंदिर के अलग-अलग गवाक्षों और कोनों को इन वस्तुओं के द्वारा सजाना चाहिए।

कला-मंदिर के तलघर को अत्यधिक सामग्री से नहीं भर देना चाहिए। लेकिन भीतर चलने-फिरने के मार्ग रखकर अलग-अलग प्रसंगो मे रंगोली बनाकर उसे सजाना चाहिए। स्थाई रूप से सजाई हुई अन्य सामग्री के चारों ओर अगर रंगोली की जाती है तो वह चेतना पैदा करती है। रांगोली स्थाई नही होनी चाहिए।

कला-संग्रहों को कला-उत्सवो का स्थानक बना देना चाहिए।

कभी-कभी वहा दीपमाला करनी चाहिए चारो तरफ दीपक विविध आकार बनाते हों इस तरह सजाए जाए। दीपक के तेल तथा प्रकाश के रंगों मे विविधता लाने का प्रयत्न किया जाए। कभी-कभार मात्र फलों से तो कभी-कभी साग-भाजी से; कभी मात्र पत्तो से तो कभी अलग-अलग अनाजों के दानों से संग्रहालय को सजाया जा सकता है। यों अलग-अलग तरह से सजा-धजा कर कला-मदिर को जीवंत रखा जा सकता है।

बालक इन सग्रहालयों में रुचि लेने लगें, इसके लिए उन्हें बार-बार वहां लाना चाहिए। बालकों को लाने वाला शिक्षक अलग-अलग समय में सगृहीत वस्तुओं के बारे मे बच्चों से बातचीत करे, उन्हें बताए। बालक स्वयं संग्रह-योग्य वस्तुएं एकत्रित करें, इसके लिए संग्रहालयों का बालकों के प्रवास आयोजित करने चाहिए तथा उनके द्वारा लाई गई चीजो को संग्रहालय में स्थान देना चाहिए। संग्रह एकत्रित करने के काम में जब-तब बालकों को मदद भी दी जानी चाहिए।

वैवाहिक जीवन की धन्यता कब समझ में आएगी ?

जिस तरह बीज में वृक्ष है, उसके फूल हैं और फल हैं, उसी तरह बालक में सपूर्ण मनुष्य है।

युवावस्था बाल्यावस्था का विकास-मात्र है। बालक अवस्था का मध्याह्न युवावस्था हैं काल-भेद से मनुष्य की सब अवस्थाएं बालक की ही भिन्न-भिन्न अवस्थाएं हैं।

बालक मनुष्य-जाति का मूल है, और इस मूल से ही इसकी प्रगति का प्रवाह जीवन-लक्ष्य की दिशा में बहता रहता है।

बाल्यवस्था में यह प्रवाह बलवान होते हुए भी छोटा रहता है। यह मद बनता है। अलग-अलग प्रवाह-पट और अलग-अलग गति धारण करता हुआ है, भटकता रहा है।

आज का युवक, असंतुष्ट युवक, अव्यवस्थित युवक, हाथ-पैर पीटता हुआ युवक, कल का दुत्कारा हुआ, जहां-जहां फेंका गया और जैसे-तैसे गढ़ा गया बालक है ! युवक आज जैसा है, कल वह वैसा बालक था।

आज के युवक को कोई दोप न दें, दोष उनको दिया जाना चाहिए, जिन्होंने बालकों को सताया है, जिन्होंने बालकों की बढ़ती हुई शक्ति को रोका है, और जिन्होंने उनकी कल्पना और क्रिया के विकास के मार्ग में रोड़े अटकाए हैं। जो लोग अपने ही संकीर्ण और क्षुद्र स्वार्थ में और जीवन के गोरख-धंधों में उलझे रहे, जो बालक को समझे ही नहीं, वे लोग ही

आज के पगु युवक के, नि:सत्त्व और निर्वीय युवक के निर्माता है, और इसी कारण वे आज के युवकों के द्रोही है। वे अपनी युवावस्था के चलते यौवन का आनंद लूटने में बालक के लालन-पालन को भूल गए। अपने यौवन के काव्य में रमकर वे बालक के भव्य काव्य को न तो समझ सके, और न सुन ही सके। उन्होंने बालक के विकास मे नहीं, उसकी मां का विकास करने मे अपनी सारी शक्ति खर्च कर दी। उसको देखते रहने मे वे बालक को देखना भूल गए। उन्हीं ने हमको आज के युवक भेंट मे दिए हैं, और आज के युवकों के जटिल प्रश्नों के लिए हम उन्हीं के आभारी है। अच्छा होता, यदि उन्हे अपने बालकों की फिकर ली होती। उन्होंने अपनी जवानी के सुखों का उपभोग करते हुए भी बालक के सुख की खोज की होती, तो अच्छा रहता। अच्छा होता, यदि अपने सुखों की बलि देकर वे बालक के सुख के लिए खप गए होते। ऐसा हुआ होता, तो दुनिया बहुत पहले ही स्वर्ग की तरह सुखमय बन चुकी होती, और बालको के लालन-पालन की अथवा युवकों की अपनी एक भी समस्या शेष रही न होती।

लेकिन यह सब तो हो चुका है। अब किसको उलाहना दिया जाए, और किसको न दिया जाए ? सवाल यह है कि अब किया क्या जाए ? कहां से शुरू किया जाए ? कौन शुरू करें ?

मैं कहूंगा कि हम बालकों से ही शुरू करें। बालकों के लालन-पालन से लेकर मनुष्यो के लालन-पालन का और उद्धार का काम हम अपने हाथ मे लें। छोटी सुकुमार अवस्था से ही हम बाल-जीवन की सार-संभाल शुरू करें, और बालक के विकास को संपूर्ण और शुद्ध रूप से गतिमान बनाएं।

इस काम को कौन संभाले ? मैं कहता हूं कि युवक संभालें--निश्चित रूप से युवक ही सभालें। वे युवक संभालें, जिनके घर में बालक हैं। वे युवतियां संभालें, जिनके घर में बालक हैं, मां-बाप के रूप में युवक और युवती ही बच्चों के लालन-पालन के और उनके विकास के सच्चे

अधिकारी है, और सच्चे जिम्मेदार भी हैं।

आज का युवक चारो तरफ से परेशान है। एक तरफ उसको पढ़ाई करनी है, दूसरी तरफ से पेट भी भरना है, और जिस पर प्रकृति ने और समाज ने कृपा की है, उसको विशेष रूप से एक पत्नी का भरण-पोषण और सरंक्षण करना है, एक या एक से अधिक बालकों के पोषा और शिक्षण की व्यवस्था भी करनी है। समाज ने और रूढ़ियों ने आज युवक को ऐसी स्थिति में ला पटका है, इसका परिणाम यह हुआ है कि इन चतुर्विध कठिनाइयो का सामना करने के लिए युवक को अपनी सारी शक्ति खर्च करनी होती है। इस सबके कारण वह बराबर, अशक्त, निस्तेज और निराश बनता जा रहा है।

पुराने लोगों की यह बात उनके अपने अनुभव मे से निकली लगती है कि अपनी पढ़ाई पूरी कर लेने के बाद ही युवक को गृहस्थाश्रम मे प्रवेश करना चाहिए। इससे यह बात आसानी से समझ मे आ सकती है कि बाल-विवाह की प्रथा एक भयंकर-से-भयंकर कुप्रथा है। स्वावलबन की शिक्षा न मिलने के कारण ही आर्थिक तंगी भुगतते-भुगतते युवक कमजोर बनता जाता है। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि स्वावलबन विहीन शिक्षा एक निकम्मी शिक्षा है। यह परिस्थिति उन युवकों और युवतियो को एक बहुत ही कीमती सबक सिखाती है, जो वैवाहिक जीवन के सुखों की आकांक्षा रखते हैं। इससे उनको पता चल जाता है कि कितनी तैयारी के बाद उनको गृहस्थ-जीवन में प्रवेश करना चाहिए।

किंतु आज क्या किया जाए ? आज अविवाहित युवकों और युवतियों को वैवाहिक जीवन के आनंद से दूर करना चाहिए। आज तक सारा दोष रूढियों के मत्थे मढ़कर युवको और युवतियो ने विवाह-व्यवस्था से लाभ उठाया हैं। यदि अब वे प्रेम के नाम पर झपपट ब्याह कर लेने की रूढ़ि को ही अपनाएगे, तो वे आत्म-वंचना ही करेंगे, और उनको इसके

फल भोगने होगें। स्त्री-पुरुष दोनों को अपने व्याह के पहले व्याह की तयारी के काम मे जुट जाना चाहिए। उनको समझ लेना होगा कि बालक उनके प्रेम का परिणाम और परिपाक होगा। बालक के लालन-पालन और पोपण-सवर्धन में उनको अपना सारा जीवन खपा देना होगा। जीवन को यज्ञ मानकर चलना होगा। इन सब बातो को समझ लेने के बाद ही उनको वेवाहिक जीवन की दिशा मे कदम रखने होंगे।

आज तो विवाह कुहरे में कदम रखने के ढग का एक काम है। अशुद्ध-शुद्ध भावना और छिपाए गए स्वार्थो से प्रेरित होकर युवक और युवतियां प्रेम के नाम पर ब्याह की जिस गांठ से बंधते हैं, वह गाठ कल ढीली करने या तोडने के लिए होती है। ब्याह की गाठ के बधन दृढ रहे और यह दृढ़ता भावी पीढी के संवर्धन और सस्कार के काम में खर्च हो, इसकी कल्पना कुछ ही लोगों को रहती है, और इसकी परवाह तो किसी को रहती ही नहीं।

इसलिए यह जरूरी है कि ब्याह करने से पहले युवक चेतें। स्वयं अपना भरण-पोषण करने में समर्थ होने पर भी चेते। दोनों स्वस्थ, सशक्त और वयस्क होने पर भी चेतें। दोनों ब्याह तभी करें, जब वे बालको का लालन-पालन करने योग्य बन जाएं, जब बाल-संगोपन की दृष्टि से वे अपने मन को अपनी बुद्धि को तैयार कर लें।

आज बालक का जनम एक आकस्मिक घटना-सा लगता है। नासमझ स्त्री-पुरूष को बालक अपने दांपत्य जीवन में विघ्न-रूप प्रतीत होते हैं। इसीलिए वे उनको अपने से दूर रखना चाहते है। वे नहीं चाहते कि बालक उनके बीच आएं। वे बालक की कीमत को समझते ही नहीं और समझना चाहते भी नहीं। दो बच्चों का छोटा परिवार भी आज के युवक-युवती के लिए बहुत कष्टप्रद बन गया है। जी का जजाल-सा बन गया है।

लेकिन बालकों का जन्म कोई आकस्मिक घटना नही है। जिस हद तक व्याह एक आकस्मिक घटना है, उसी हद तक बालको का जन्म भी आकस्मिक कहा जा सकता है। अनजाने ही क्यों न हो, किंतु बालक प्रकृति के सहज प्रेम और प्रेरणा की अनमोल देन है। दुनिया के सभी समझदार लोगों ने और माता-पिताओं ने इस ईश्वरी देन है। दुनिया के सभी समझदार लोगों ने और माता-पिताओं ने इस ईश्वरीय देन को प्यार के साथ अपनाया है। फिर भी आज के युवक इससे घबराते हैं। अपनी शिक्षा-दीक्षा के कारण और समाज और धर्म के क्षेत्र मे बने विचित्र वातावरण के कारण, वे बालकों को बोझ-रूप मानने लगे है। इसके फलस्वरूप वे अपने बालको के साथ अधोगति की दिशा में बढते जा रहे है।

बालक तो हमारे जीवन-सुख की एक प्रफुल्ल और प्रसन्न खिलती हुई कली के समान हैं। वे माता-पिता के हृदय के पवित्र और निर्मल प्रतिबिब हैं। किंतु जहा-तहा से बटोरे हुए झूठे-सच्चे आदर्शो की खिचडी पकाकर खाने वाले मातत-पिता अपने ही हृदयो को स्वय पहचान नही पाते। वे अपने ही जीवन को सभाल लेने मे लापरवाही वरतते है। वे खुद ही अने आपको धिक्कारते है खुद ही अपने बालकों की निदा करते हैं, उनको डाटते-फटकारते है, उनसे झगड़ते हैं, और कभी-कभी यह भी कह बैठते हैं कि हाय राम ! अब इनसे छुटकारा कैसे पाया जाए ? वे बालक को अपने काका, दादा या माता-पिता के हवाले करके सैर-सपाटे के लिए, घूमने-फिरने के लिए, मौज-मजा मनाने के लिए, पढ़ने और नाचने-कूदने के लिए घर के बाहर निकलना चाहते है, और इन सब कामों के लिए छटपटाते रहते है। कितु बालक कुकुम के पदचिह्नों के साथ घर मे लक्ष्मी लेकर आए हैं। अपनी तोतली बोली के साथ वे जीवन-शास्त्र, और प्रेममय जीवन की साक्षी लेकर आए हैं। इन सब बातो को देखने और समझने

क वदले आज के युवक और आज की युवतियां उपन्यासों, नाटको और सिनमा घरों मे आनद को खोजनी हैं। वे भाषणों, सभाओं और सम्मेलनो मे सम्मिलित होती है, और दावतो मे हाजिर रहने के लिए दौड़-भाग करती रहती हैं। और वालक बार-बार उनकी इन गतिविधियो मे वाधक वनते हैं।

अभागे माता-पिताओ के अभागे-बालक।

निःसंदेह, माता-पिताओ के लिए भी जीवन है, सुंदर और प्रेममय जीवन है। होना भी चाहिए। किंतु इस जीवन का केंद्र वालक है; इस जीवन की सुगध और सौंदर्य बालक है, और इस जीवन का सुख भी बालक ही है। अपने जीवन के सारे अरमान उनको अपने बालक के आसपास खडे करने है। बालक के साथ जुड़ा हुआ प्रेम-जीवन प्रेम का धन स्वरूप है, शुद्ध और सात्विक स्वरूप है। क्योंकि उसमें त्याग का सुख समाया हुआ है।

लेकिन ऐसे जीवन के लिए तैयारी आवश्यक है, और यह तैयारी स्त्री अथवा पुरुष को कर लेनी चाहिए। विवाह-सस्था की सदस्यता स्वीकार करने वाले इसकी अवगणना कर नही सकेंगे। बाह्य में अवगणना करके आखिर वैवाहिक जीवन में प्रवेश करने वाले गलती के साथ पाप भी करेंगे। मन मे नि संतान रहने की अभिलाषा रखकर कृत्रिम रीति से गृहस्थाश्रम चलाने वालों को अंत मे बालकों के लिए तरसना पडेगा और जब कृत्रिमता के प्रायश्चित के रूप में उनको वंध्यत्व प्राप्त होगा, तब वे अपने को ही शाप देंगे।

इस स्थिति के आने से पहले ही हर एक युवक और युवती को चाहिए कि जिस तरह वे शरीर-शास्त्र का, इतिहास, भूगोल, पाक-शास्त्र और आभूषणकला आदि का परिचय प्राप्त कर लेते हैं, उसी तरह वे बालकों के लालन-पालन की विधि का और शिक्षा-शास्त्र का भी ज्ञान

प्राप्त कर लें

कइ लोग इसमें शर्म महसूस करते है, लेकिन वह झूठी शर्म है। जिस तरह आगे किसी के वीमार पड़ने का ध्यान रखकर नर्स का काम सीखने मे शर्म नहीं है, जिस तरह आगे कभी काम आने वाली कोई विद्या सीखने में शर्म नहीं है, उसी तरह बाल-सगोपन की विद्या सीख लेने में कोई शर्म होनी नही चाहिए।

अब हम यह सोचें कि किसी भी युवक या युवती को माता-पिता बनने के लिए क्या तैयारी करनी होगी ? क्या-क्या पढ लेना होगा ? घर कैसे तैयार करना होगा ? खुद अपने को, अपने शरीर को और मन को किस तरह तैयार कर लेना होगा ? और अत मे, अपने आसपास का सारा वातावरण कैसा वना लेना होगा ?

जब हमारे घर में कोई मेहमान आता है, तो उस के लिए हम थोड़ी जरूरी तैयारी कर लेते है। यह तैयारी तात्कालिक होत है। इसमे किसी को कोई आपत्ति भी नही होती। लेकिन हमारे घर में जो स्थायी मेहमान आने वाला है, उसके लिए तो हमको लंबी और स्थायी तैयारी की आवश्यकता होती है। यह तैयारी हमको सोच-समझकर, सम्मानपूर्वक करनी चाहिए। यह मेहमान हमारा एक अंग है, हमारे वश की वेल को बढाने वाला है, हमारे कुल का दीपक है, यह मनुष्य-जाति के पुनीत पदचिह्नो अनंत विकास की दिशा में आगे बढाने वाला एक व्यक्ति है। हमें इन सब बातो का ध्यान रहना चाहिए, और इसके लिए हमारी तैयारी भी भव्य होनी चाहिए।

हर एक युवक और युवती और कुछ नही, तो कम-से-कम यह सोचकर ही अपने शरीर को स्वस्थ और सुदृढ़ बना लें कि यही शरीर फिर उसके घर में जन्म लेने वाला है। माता-पिता का शारीरिक स्वास्थ्य जैसा होगा, वालक भी वैसे ही वनेंगे। यही नहीं, वल्कि शारीरिक स्वास्थ्य से

सुखी माता-पिता ही अपने बालकों की अच्छी सार-संभाल कर सकेंगे, और खुद भी बालकों के सुख का आनंद लूट सकेंगे। आज की स्वस्थ और दुर्बल माताओं के लिए बालक भार-रूप और दुःख-रूप बन जाते हैं। भले ही हम इस दुःख से दुःखी हो लें, लेकिन इस दुःख के लिए जिम्मेदार तो माता-पिता ही है।

अपना वैवाहिक जीवन शुरू करने के बाद भी माता-पिता अपने शरीर को संभाल कर शारीरिक सुखों का उपभोग करेंगे, तो वे बालक के लिए आशीर्वाद-रूप बन सकेंगे। जो अपनी प्राण-शक्ति को बिना सोचे-समझे अधिक खर्च करते रहेंगे, या बर्बाद कर डालेंगे, उनको अपने जीवन के आनंदपूर्ण दिन कम कर लेने होंगे। सुख का उपभोग करने के लिए भी सुख का संयमित उपभोग आवश्यक है।

बालक-रूपी अतिथि का स्वागत करने के लिए हमको अपने मन से भी तैयार भी होना चाहिए। मतलब यह है कि हमको यह जान लेना चाहिए कि छोटे बालक की खुराक क्या हो सकती है, उसके दांत आने लगे या वह बीमार पड़े, तो हमको तात्कालिक उपाय क्या करने होंगे, बालक के बोलना सीखने का समय कब आता है, और उस समय हम किस तरह उसकी मदद कर सकते हैं, अपना विकास करने की उसकी रीति क्या है, और उस रीति मे हम उसको कितना संरक्षण दे सकते है, किस हद तक उसकी मदद कर सकते है, आदि-आदि। हमको जानना चाहिए कि बालक की अपनी शक्ति क्या है, उसको किस प्रकार के शिक्षण की आवश्यकता है, और वह अपने मन का कैसा विकास चाहता है। हमको जान लेना चाहिए कि बालक की कल्पना-शक्ति, प्रेरणा और स्वयं चेतना आदि की स्थिति क्या है और कैसी है। हमको यह सब जानना होगा। लोग इसको मानस-शास्त्र कहते है। इस मानस-शास्त्र के बाल-शिक्षा संबंधी सामान्य सिद्धांतों का ज्ञान हर एक माता-पिता को प्राप्त कर ही

लेना है इसके लिए उनको इस विषय की पुस्तकें पढ़ना चाहिए बालकों के पालन-पोषण में लगे विद्यालयों और परिवारों में जाकर सब कुछ देखना-समझना चाहिए।

मा-बापो को बालकों के बारे में फैली हुई अनेक गलत धारणाओं को शुद्ध कर लेना होगा। अगर नई पीढ़ी के युवक और युवतिया भी पुराने अंधविश्वासों और तौर-तरीको के बीच ही अपने बालको का पालन-पोषण करेगी, तो इस दुनिया के लिए आगे बढ़ने की कोई आशा नहीं रह जाएगी। युवक और युवती अपने को प्रगतिशील मानते भी होगे, तो भी उनका वह भ्रम लंबे समय तक टिक नही सकेगा।

बालकों के पालन-पोषण और शिक्षण के विषय मे भी अनेक गलत धारणाएं प्रचलित हैं। आज के हमारे युवक-युवती देवी-देवताओ की मनौतियो से चाहे बचे हो, लेकिन बच्चों के पालन-पोषण की जंगली रीतियों और रूढ़ियों से बचना बहुत मुश्किल है। नए माता-पिता भी अपने बालकों का पालन-पोषण उन्हीं गलत रूढियों औ रीतियों से करना चाहेंगे। अतएव ऐसा समय आने से पहले वे ज्ञानपूर्वक यह समझ लेंकि बालक स्वय अपना विकास करते रहने की अद्भुत चेतना-शक्ति के स्वामी होते हैं।

बालक की आत्मा स्वतंत्र है, और वह अपने निश्चित ध्येय की दिशा में आगे बढना चाहती है। वह हम से यह आशा रखती है कि हम उसको उसके इष्ट कार्य के लिए अनुकूल परिस्थिति दे और निर्विघ्नता दें।

नए माता-पिता समझ लें कि बालक न तो मिट्टी का पिंड है, और न मोम का ऐसा लौंदा ही है कि हम उसको जैसी भी शक्ल देना चाहे, वैसी शक्ल उसकी बन जाए। बालक का अपना एक चेतन-युक्त व्यक्तित्व होता हैं वह स्वय ही अपने रूप को गढ़ने वाला है। अपनी प्रकृति के गुण-धर्म के अनुसार वह अपने को गढ़ भी सकता है। मा-बापों को

चाहिए कि वे उसके इस कार्य में बाधक न बने बल्कि बालक की सारी गतिविधियों का सूक्ष्म अवलोकन करके वह जहा भी उसे जरूरत हो, वहा उसकी मदद के लिए उसके आस-पास बने रहें।

युवक माता-पिता समझ ले कि मारने-पीटने से या इनाम देने से बालक सुधर नही सकते, उलटे वे बिगड़ते है। मार-पीट से बालक मे गुंडापन आ जाता है। इनाम के कारण उसकी बुद्धि व्यभिचारी बन जाती है। इन दोनो के कारण बालक गुलाम बन जाता है।

जिस तरह नए माता-पिता अपने लिए सच्ची स्वतत्रता चाहते हैं, उसी तरह बालक भी अपने लिए स्वतत्रता चाहता और मांगता है। बालक भी माता-पिता की, उनके आचार-विचार की और उनकी कुल-परंपरा की बेड़ियों से छूट जाना चाहता। माता-पिताओ को चाहिए कि वे उसको इन बेड़ियो से मुक्त कर दें।

संक्षेप मे, बालक, जो हमारे लाडले और महगे मेहमान हैं, हम से सच्ची स्वतत्रता की, सहानुभूति-युक्त सहायता की और बाल-विकास से सवलित प्रयोग-सिद्ध ज्ञान की आशा रखते है। हम अपने को इसके लिए तैयार कर लें।

जब अपनी ऐसी तैयारी के साथ हम बालकों के आगमन के लायक बनकर उनके स्वागत के लिए उनकी बाट देखते हुए खड़े रहेंगे, तो निश्चय ही हमारे घरों में विभूतियां जन्म लेंगी, हमारे वातावरण में वे अपना अद्भुत विकास करेंगी और हमारा और हमारे समय की दुनिया का कल्याण करेंगी।

तभी हम अपनी जवानी की, अपने गृहस्थ-जीवन की, और अपनी गृहस्थी के सुख की धन्यता को समझ सकेंगे।

●●